श्रीकृष्ण-सन्देश
वर्ष : ६ • अंक : १२

निगमामृत

(लक्ष्मी-सूक्त)

: १ :

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥

जो सुवर्ण-सी कान्तिमती हैं दरिद्रता जनकी हरती,
स्वर्ण-रजतकी मालाओंको हैं सदैव धारण करती।
आह्लादिनी हिरण्मयी जो दिव्य छटाएँ छिटकायें,
वे लक्ष्मी हे अग्निरूप हरि, मेरे घर-आँगन आयें॥

: २ :

तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥

हे सर्वज्ञ हरे! मेरे हित आप वही लक्ष्मी लायें,
जो सुस्थिर हो रहे, न तजकर और कहीं मुझको जाये।
जिसके होनेपर मैं वाञ्छित कनक-रत्न-धन सब पाऊँ,
गौओं, अश्वों, भृत्य, बन्धुओंसे भी पूरित हो जाऊँ॥

ग्राहक और पाठक महानुभावोंसे

भगवान् श्रीकृष्णकी असीम अनुकम्पासे 'श्रीकृष्ण-सन्देश' इस अंकके साथ अपना छठाँ वर्ष पूर्ण कर रहा है। अगला अगस्त मासवाला अङ्क सातवें वर्षका प्रथम अङ्क होगा। श्रीकृष्ण-पराक्रम-विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित होगा। इसमें हिन्दी-जगत्के गण्यमान्य चुने हुए लेखकोंके विद्वत्तापूर्ण लेख होंगे, जो भगवान् श्रीकृष्णके प्रेरणाप्रद विविध सन्देशोंको नाना भाव-भङ्गीके साथ प्रसारित करेंगे। वर्तमान वर्षके पिछले अङ्कोंपर विहंगम दृष्टि डालनेपर आप देखेंगे कि नव वर्षके नये सन्देशमें सबको श्रीकृष्णके पथपर चलनेका सन्देश दिया गया है। श्रीकृष्ण सर्वव्यापी परमेश्वर तथा सबके आत्मा हैं। इसीलिए वे हमारे सबसे बड़े आत्मीय और प्रियतम हैं। श्रीकृष्णसे भिन्न कोई वस्तु नहीं, कोई तत्त्व नहीं। अस्ति-नास्ति सब कुछ श्रीकृष्ण हैं। यह केवल कहने-सुननेकी बात नहीं है; हमें अनुभव द्वारा इस सत्यका साक्षात्कार करना होगा। हम जीवनकी हरेक गति-विधिमें, साँस-साँसमें श्रीकृष्णके संस्पर्शका आस्वादन करें, तभी हमारा जीवन सार्थक होगा। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके नायक श्रीकृष्ण हमारे प्रियतम सखा हैं, आत्मा हैं—प्राणवल्लभ हैं; यह अनुभव करते हुए तदनुसार जीवन बनाना ही परम पुरुषार्थ है। हम अपने पिछले परामर्शको पुनः दुहराते हैं कि हमें श्रीकृष्णके नेतृत्वमें श्रीकृष्णके गरुडध्वजके नीचे श्रीकृष्ण-सखाओंके रूपमें संगठित होना और अभय-अनाचारके प्रतिकारके लिए सदा अग्रगामी रहना चाहिए। सबके हितमें ही सर्वात्मा श्रीकृष्णका हित है; अतः हमें व्यक्तिगत स्वार्थसे ऊपर उठकर सर्वभूत-हितमें ही रत रहना चाहिए। यदि हम सोत्साह ऐसा करते रहें तो विजयश्री चरण चूमेगी; क्योंकि 'यतः कृष्णस्ततो जयः।' विगत अङ्कोंके अध्ययनसे आपको जीवन-दर्शनकी नयी दृष्टि मिलेगी, आप भारतीय नारीकी गौरव-गाथासे परिचित होंगे। अनाचारके दिव्य जन्म-कर्म और आविर्भावका रहस्य खुलेगा। श्रीकृष्ण-प्राणाधिका श्रीराधिकाके दिव्य रूप, गुण और प्रभावका निरूपण प्राप्त होगा। कवीन्द्र रवीन्द्रकी श्रीराधाकृष्णमयी रचनाका रसास्वादन मिलेगा। राष्ट्र-शक्तिके विविध रूपोंसे आप परिचित होंगे। परलोक, पुनर्जन्म तथा ईश्वरके प्रति आस्था बढ़ानेवाली विचारधारा मिलेगी। राष्ट्रके कर्णधारोंके समक्ष जो सामयिक एवं क्रान्तिपूर्ण कार्यक्रम प्रस्तुत होना चाहिए; उसे पढ़कर आपकी विचार-शक्ति उद्वेलित होगी। आप संकीर्णता या कृपणताके घेरेसे ऊपर उठेंगे। भगवान्के प्रति आत्म-समर्पणका सन्देश देनेवाली गीताका गान आपके मानसमें गूँज उठेगा। सर्वत्र

भगवान्‌की कला और जादूगरी दिखायी देगी। नववधुओंकी आन्तरिक वेदनाका काव्यमय करुण चित्र उपलब्ध होगा। श्रीकृष्ण-जन्मस्थान मथुरामें आयोजित आकर्षक सांस्कृतिक कार्यक्रमोंकी झाँकियाँ सुलभ होंगी, प्रत्यक्षदर्शियोंके प्रेरणाप्रद उद्गार प्रकट होंगे। महाभारतके सामाजिक अनुबन्धसे आपका मन पुरातनके प्रति आकर्षणका अनुभव करेगा। महात्मा गांधी, महामना मालवीय जी तथा विभिन्न धर्मोंके प्रवर्तक संत-महात्माओंके प्रेरणादायक जीवनवृत्त आपको प्रभावित करेंगे। फाग, होली और वसंत-सम्बन्धी संत-कवियोंके पद एवं आकर्षक वर्णन आपके हृदयमें भक्तिरसका संचार करेंगे। आत्मकथाकी शैलीमें वर्णित भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रका जीवनवृत्त आपके मानस-सिन्धुको आन्दोलित किये बिना नहीं रहेगा। 'श्रीकृष्णसन्देश'की भावी योजनापर प्रकाश पड़ेगा और तदनुसार उत्तमोत्तम सामग्रीके संचयसे आप संतुष्ट होंगे। आधुनिक काव्योंपर श्रीकृष्ण-चरित्रके प्रभावका आप साक्षात्कार करेंगे। महापुरुषोंकी जीवन-झाँकी आपके लिए प्रेरणादायक सिद्ध होगी तथा महाकवि ग्वालकी यमुनालहरीमें अवगाहन करके आपका अन्तर्मन परम-शान्तिका अनुभव करेगा तथा भगवान्‌की लीलाओंपर उठनेवाली शङ्काओंका समुचित समाधान पाकर आप अत्यन्त संतुष्ट होंगे।

नये वर्षमें 'श्रीकृष्णसंदेश'को और भी उत्तमोत्तम सामग्रीसे सुसज्जित करनेका हमारा संकल्प और प्रयास है। ग्राहकों और पाठकोंसे अनुरोध हैं कि वे नये वर्षका वार्षिक शुल्क अभीसे भेजना प्रारम्भ कर दें और प्रत्येक ग्राहक तथा पाठक कम-से-कम पाँच-पांच नये ग्राहक बनाकर 'श्रीकृष्ण-सन्देश'के पावन प्रचार-प्रसारके पुण्य कार्यमें हाथ बँटावें। आशा है श्रीकृष्णकी कृपासे हमारा यह अनुरोध सफल होगा।

●

आवश्यक सूचना

इस अंकके साथ 'श्रीकृष्ण-सन्देश'का छठाँ वर्ष पूर्ण हो रहा है। कृपालु ग्राहक अग्रिम वर्षका वार्षिक शुल्क शीघ्र भेजनेकी तत्परता दिखावें।
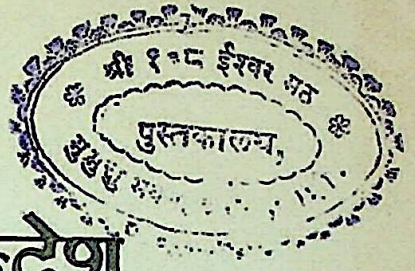
श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति-प्रधान मासिक

प्रवर्तक

ब्रह्मलीन श्री युगलकिशोर बिरला

● संख्या

वर्ष : ६, अङ्क : १२

जुलाई, १९७१

श्रीकृष्ण संवत् : ५०७०

● शुल्क

वार्षिक : ७ रु०

आजीवन : १५१ रु०

सम्पादक ●

पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

प्रबन्ध-सम्पादक

देवधर शर्मा

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८

विषय-सूची

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान : प्रेरणाप्रद

प्रत्यक्षदर्शियोंके उद्‌गार

(जुलाई १९७१)

श्री शिवकुमार शर्माके साथ श्रीकृष्ण-जन्मस्थानका अवलोकन करनेका शुभ अवसर मिला। मैं इसको अपना परम सौभाग्य समझता हूँ। इस प्राचीन स्थानके उद्धार करनेवाले आयोजक-गण समस्त धर्मप्राण जनताके धन्यवादके पात्र हैं।

राजमंगलनाथ त्रिपाठी
पुराना हैदराबाद
लखनऊ

आज बहुत दिनोंकी अभिलाषा पूर्ण हुई। भगवान्‌के जन्मस्थानका दर्शन करके हृदयमें एक आत्मिक सुख और शान्तिका अनुभव हुआ। स्थान जितना सुन्दर बना है, उतनी ही सुन्दरता और स्वच्छतासे रखा भी गया है। मैं यहाँके संचालकोंको हृदयसे बधाई देना चाहता हूँ।

कृष्णचन्द्र शुक्ल
निर्देशक—बिरला शिक्षण-संस्थान
पिलानी

मैं आज अपनी पत्नीके साथ जन्मस्थानपर दर्शन करने आया। मन्दिरको देखकर व दर्शन करके चित्त प्रसन्न हुआ। व्यवस्था व सफाई आदि सुन्दर है।

कालीचरण भगत
२१/१, प्रेटोरिया स्ट्रीट,
कलकत्ता—१६

सन् १९४२ से अबतक कितनी बार इस परम पावन भूमिपर आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। जगद्गुरु श्रीकृष्णके अनुरूप ही यह स्थान उत्तरोत्तर विकसित हो रहा है : समय पाकर दैहिक, दैविक, भौतिक व्याधियोंका यह निवारण-केन्द्र भारत ही नहीं सारे संसारका प्रकाश-स्तम्भ बनकर पथ-प्रदर्शन करेगा। इसके लिए किस-किसका नाम लेकर वन्दना करूँ, सबमें वही है इस भावसे देवधरजीको वन्दना करता हुआ अपनेको अनुगृहीत पाता हूँ।

श्रीगोपाल मिश्र,
हनुमद्-वाटिका
सीतापुर रोड, लखनऊ–६

मैंने श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके दर्शन आकर किये थे, तभीसे मेरे मनमें एकाएक इस स्थानके प्रति अत्यन्त श्रद्धा हुई व मेरे मनमें एक संकल्प हुआ, जिसकी पूर्तिके लिए ईश्वरीय प्रेरणासे यहाँ आकर दर्शन लाभ लिया। यह अत्यन्त प्राचीन स्थान है, जिसका प्रमाण हमारे धर्म-ग्रन्थोंमें है। मैं समस्त जनतासे प्रार्थना करता हूँ कि अपना योगदान देकर इस पुण्य-कार्यमें भागीदार बनें।

श्रीकृष्णचन्द्र सेवक
कस्तूरचन्द खंडेलवाल
पश्चिम निमाड़ (म० प्र०)

It's purely because of the grace of Almighty that I had the great forture to visit the Birth place of Lord Krishna who is none other than God Almighty. It is defficult to describe the emotions that were aroused in my visit at the Darshan of this place.

C. V, Rane
Registrar, Supreme Court
of India. new Delhi.

We are happy to have had the apportunity of paying our homage to the holy place and visit for the completion of the projected temple early.

J. D. Mathur
Supdtg. Engineer (P. W. D.)
Lucknow.

A delightful and lovely inspiring place of Godly atmosphere. One must really encourage such big Religious and public projects in the interest of Hindu religion.

Govind Das Purshotam Das
Merchant, 2/44 Godam Street
Madras-1.

I have visited the Janam-Bhoomi after ten years. It has been a rare pleasure to amount of development that has taken. Place which prove beyond any doubt the continuing and over increasing faith in mankind in things religious.

R. N. Sheopury
D. I. G. Crp F.
Ajmer.

प्रेमी ग्राहकों तथा पाठक-पाठिकाओंके लिए

शुभ सूचना

'श्रीकृष्ण-सन्देश'का आगामी विशेषाङ्क 'श्रीकृष्ण-पराक्रमाङ्क' होगा

अगस्त मास (सन् १९७१)से 'श्रीकृष्ण-सन्देश'का सातवाँ वर्ष प्रारम्भ हो रहा है। इस वर्षका प्रथम अङ्क 'श्रीकृष्ण-पराक्रमाङ्क'—विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित होगा। इसमें अधिकारी तथा गण्यमान्य मनीषी विद्वानों द्वारा लिखे गये श्रीकृष्ण-चरित्रविषयक लेख रहेंगे, जो महापराक्रमी महापुरुष भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रम-पक्षके पोषक एवं परिचायक होंगे। आजकल हमारे देशको पराक्रमी शूर वीरोंकी आवश्यकता है। इस अङ्क द्वारा नवयुवकोंमें पराक्रम एवं वीरभावके जागरणकी आकांक्षा पूर्ण होगी। 'श्रीकृष्ण-पराक्रमाङ्क'में श्रीकृष्ण-जन्मसे लेकर यदुकुल-संहारपर्यन्त चुने हुए प्रसंग, जिनसे पराक्रमके जागरण और पोषणकी सम्भावना है, संगृहीत होंगे। यथा—पूतना-बध, शकटभंजन, तृणावर्त-विनाश, यमलार्जुन-भंजन, वत्स, वक, अघ और धेनुक आदि असुरोंके वध, कालिय-मर्दन, प्रलम्ब-मारण, गोवर्धनधारण, शङ्खचूड-अरिष्टासुर-वध, धनुर्भङ्ग, कुवलयापीड-निपातन, मल्लयुद्ध, कंस-निकन्दन, जरासन्धसे युद्ध, शम्बर-संहार, भौमवध, वाणासुरसे युद्ध, पौण्ड्रक, काशिराज और द्विविधके संहार, शिशुपाल-वध, शाल्वसे युद्ध, श्रीकृष्ण-दौत्यकर्म, महाभारतमें श्रीकृष्णके पराक्रम और तेज तथा यदुकुल-संहारके प्रसङ्ग रहेंगे। जो आधुनिक परिवेशमें युगकी आवश्यकताके अनुरूप भाव-भाषामें प्रकाशित होंगे। लेखक महानुभाव १५ जुलाईतक लेख भेज देनेकी कृपा करें। ग्राहकोंको आगामी शुल्क भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करा लेनी चाहिए। विज्ञापनदाता इस अङ्कके लिए विज्ञापन भेजनेमें शीघ्रता करें।

व्यवस्थापक—'श्रीकृष्ण-सन्देश'

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

वर्ष : ६] मथुरा, जुलाई १९७१ [अङ्क : १२

राजधर्म

राजा (अथवा सर्वकार) को प्रजापालक पिताके समान होना चाहिए। वह सदा समस्त प्रजाका कष्टसे—दुःख-विपत्तिसे उद्धार करे। जैसे गजराज आत्मरक्षापूर्वक दूसरे गजोंकी रक्षा करता है, उसी प्रकार अपनी रक्षा करते हुए प्रजाजनोंका भी सर्वथा संरक्षण करे। ऐसा नरेश्वर ही नरपति कहलानेका अधिकारी होता है। वह अपने इस राजोचित कर्तव्यका पालन करके इस लोकमें अपने सारे अशुभ धो-बहा देता है, तथा परलोकमें सूर्य-तुल्य तेजस्वी विमान द्वारा विचरण करता हुआ देवराज इन्द्रके साथ रहकर दिव्य आनन्द-भोगका भागी होता है। जो राजा विपत्तिमें पड़े हुए मेरे भक्त ब्रह्मविद् ब्राह्मणका उस विपत्तिसे उद्धार करते हैं, उन्हें मैं भी सब प्रकारकी आपत्तियोंसे बचा लेता हूँ। जैसे समुद्रमें डूबते हुए प्राणीको नौका बचा लेती है; उसी प्रकार मैं भी उस विप्ररक्षक प्रजापालक राजाकी रक्षा करता हूँ। मैं स्वयं ही उसकी रक्षाके लिए नौका बन जाता हूँ। यदि राजा आपत्तिमें पड़कर जीविकाकी समुचित वृत्तिसे वञ्चित हो गया हो, केवल प्रजापालनसे उसका जीवन-निर्वाह न हो पा रहा हो तो वह वणिग्वृत्तिका

सहारा ले व्यापारसे ही जीवन-निर्वाह करते हुए उस आपत्तिको पार करे। अथवा यदि बहुत बड़ी विपत्तिका सामना करना पड़ा हो तो शिकारके द्वारा या विप्रवृत्तिसे—विद्यार्थियोंको पढ़ाकर अपनी आपत्तिके दिन काट दे। परन्तु नीचोंकी सेवा—श्वान-वृत्तिका आश्रय कभी न ले। आपत्तिका समय बीत जानेपर निम्न वर्णोंकी वृत्तिसे जीविकोपार्जन करनेका लोभ न करे। शौर्य, तेज, धृति, दक्षता, युद्धमें पीठ न दिखाना, दान और स्वाभिमान, ये सभी राजा एवं राजन्यके सहज धर्म हैं। गृहस्थ राजा अनायास प्राप्त अथवा शास्त्रोक्त शुद्ध कर्मोंद्वारा उपार्जित पवित्र धनके द्वारा अपने भृत्यों तथा आश्रित जनोंको किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचाते हुए न्याय और विधिके अनुसार यज्ञ करे। यज्ञ शब्द शास्त्रोक्त दर्श-पौर्णमास आदि यज्ञोंका परिचायक तो है ही, भगवद्भावसे समस्त प्राणियोंको सुख पहुँचानेके लिए जो दान, सेवा, तथा परोपकार आदि किये जाते हैं; उन सबको भी यज्ञके अन्तर्गत समझना चाहिए। राजा अथवा (शासक-संस्था)का सबसे प्रधान धर्म या कर्म यही है कि राज्यकी समस्त प्रजा सुखी रहे, किसीको किसी प्रकारका भय अथवा क्लेश न हो; सभी अपनेको सुरक्षित अनुभव करते हुए सत्कर्ममें संलग्न रहें। राज्यके दुःख-दैन्यको दूर करके उसे समृद्धिशाली बनाना और प्रजाको धर्म, नीति एवं सदाचारके पथपर चलाना भी राजाका परम पावन कर्तव्य है।

●

आदर्श-राज्य

आदर्श राज्य वह है, जहाँ सब सुखी, सब नीरोग, तथा सभी क्षेमदर्शी हों, कोई दुःखी न हो। जहाँ दैहिक, दैविक और भौतिक ताप सर्वथा मिट गये हों, वहीं रामराज्य है। आदर्श-राज्य उसे कहा जा सकता है, जहाँका राजा या शासक दृढ़ विश्वासपूर्वक यह उद्घोष कर सके कि मेरे राज्यमें कोई चोर नहीं, कंजूस नहीं, शराबी नहीं तथा कोई ऐसा नहीं जो अग्निहोत्री न हो, विद्वान् न हो। मेरे राज्यमें कोई स्वेच्छाचारी-व्यभिचारी पुरुष ही नहीं है; फिर स्त्रियाँ उन दोषोंसे युक्त कैसे हो सकती हैं ?

●

आह्वान

आओ फिर आओ घनश्याम !
वसुधा व्यथित पुकार रही है तुमको निशिदिन आठो याम।
आतपताप दे रहा जगको निठुर निदाघ नृशंस कंस-सा,
दानवताके दावानलसे दग्ध हो रहा मनुज वंश-सा।
भाव-भक्ति वसुदेव-देवकी बन्द तमोगुणकी कारामें,
उधर प्रीतिकी बाढ़ आ रही कालिन्दीकी रसधारामें।
ईहा रुद्ध सुप्त असुरोंकी भक्त-पपीहा रटते नाम,
आओ फिर आओ घनश्याम ॥

शुष्क तुम्हारे बिना हो चला भूतलके जीवनका रस है,
किंकर्तव्यविमूढ लोकका चलता नहीं कहीं कुछ बस है।
अँगड़ाई ले उठी दानवी वृत्ति पिये-सी मादक हाला,
हिंसा-लूट अधर्म अनयका चारों ओर बोल है बाला।
त्राहि-त्राहि मच रही धरापर कहाँ छिपे हो करुणाधाम,
आओ फिर आओ घनश्याम ॥

पाक-असुर नरमेध मचाते धारण कर अति दारुण वेश,
मिट्टीमें मिल गया हो गया कँगला-सा वह बँगला देश।
भारत पर संकट प्रस्तुत है, आओ हे भारतके मित्र !
प्रणतपाल ! पृथिवीपर फिरसे पड़ें तुम्हारे चरण पवित्र।
रस बरसाओ पुनः भूमि हो शस्य-श्यामला ललित ललाम,
आओ फिर आओ घनश्याम ॥

●

व्रजकी रथयात्रा-परम्परा

श्री भगवान सहाय पचौरी

रथयात्राका अभिप्राय 'भगवानकी रथयात्रा'से है। वैष्णवोंकी 'व्रजयात्रा'के लिए जिस प्रकार 'यात्रा' शब्द रूढ़ हो गया है, उसी प्रकार 'रथयात्रा' भी समझना चाहिए। श्रीकृष्णके व्रजभूमिको छोड़ मथुरा चले जानेपर राधा तथा अन्य विरहिणी व्रजाङ्गनाएँ गीत तथा अभिनयके माध्यमसे अपने आन्तरिक भावोंकी अभिव्यक्ति 'माथुर' लीलामें करती हैं। बंगालमें इस गीताभिनयको भी 'यात्रा' कहते हैं। भगवान् श्रीकृष्णका सम्पूर्ण जीवन ही विविध यात्राओंसे परिपूर्ण रहा था। रथयात्राएँ भी उन्होंने विरल नहीं कीं। श्रीमद्भागवतके अनुसार अनेक विजय-यात्राएँ उनकी रथयात्राएँ ही थीं। तथापि श्री अक्रूरके साथ गोकुलसे मथुराकी रथयात्रा, मथुरासे द्वारकापुरीकी यात्रा, द्वारकापुरीसे कुरुक्षेत्र गमन, कुरुक्षेत्रसे पुनः द्वारका प्रत्यागमन आदि यात्राएँ रथ द्वारा ही सम्पूर्ण हुई थीं। कुछ विद्वानोंका मत है कि श्रीकृष्णके द्वारका-गमनकी पुण्य स्मृतिमें वैष्णव सम्प्रदाय इस यात्राका आयोजन करते हैं। श्रीमद्भागवत इस बातका साक्ष्य नहीं देता कि भगवान् श्रीकृष्णकी द्वारका-यात्रा रथद्वारा सम्पन्न हुई थी। दशम स्कन्धके पचासवें अध्यायमें जरासंधसे निबटनेके लिए दो दिव्य रथोंके आकाशसे अवतरित होनेका उल्लेख है। 'रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ।' पुनः बावनवें अध्यायमें जरासंधकी अक्षौहिणीको अपनी लीलासे छकानेको भगवान् प्रवर्षण पर्वतपर बलराम सहित छिप जाते हैं और पर्वतके जलनेपर शत्रु-दृष्टिको बचाते हुए पुनः द्वारकामें लौट आते हैं। अतः यहाँ रथयात्राका उल्लेख नहीं है। कुरुक्षेत्र-यात्रा अवश्य ऐसी हो सकती है, जिसे शोभा-यात्राकी संज्ञा दी जा सकती है। इस कालतक भगवान्‌ने धरतीको असुरविहीन भी कर दिया था और श्री वसुदेवने यहाँ यज्ञ भी किया था। हो सकता है वर्तमान रथयात्राका सम्बन्ध इसी स्मृतिसे हो। अथवा गोकुलसे मथुराकी यात्रामें इसके बीज निहित हो सकते हैं। कंस-जैसे बलशाली अत्याचारीसे व्रजकी मुक्ति इस यात्राका परिणाम थी। जो भी हो, व्रजकी 'रथयात्रा'का सम्बन्ध श्रीकृष्णचरित्रकी किसी न किसी महत्त्वपूर्ण रथयात्रासे अवश्यमेव रहा होगा। अस्तु।

भारतभरके वैष्णव-मन्दिरोंमें प्रतिवर्ष आषाढ़ शुक्ला द्वितीयाको अक्रूरजीकी रथयात्रा बड़ी धूमधाम और बड़े ही आकर्षण तथा समारोह-पूर्वक मनायी जाती है। व्रजमें यह 'रथयात्रा' कबसे आरम्भ हुई, इसके प्रवर्तक कौन-से आचार्य थे, प्रथम रथयात्राका सूत्रपात

कहाँ हुआ, आदि ऐसे प्रश्न हैं, जिनका समाधान उल्लेखोंसे नहीं होता। विद्वानोंका मत है कि इसकी मूल कल्पना वैष्णव मतकी देन नहीं है। श्री वल्लभ-सम्प्रदायके इतिहाससे ज्ञात होता है कि इस मतके प्रवर्तक श्रीमद्वल्लभाचार्यके युगमें रथयात्रा प्रचलित नहीं थी। विद्वानोंका कथन है कि इसकी प्रेरणाके मूलमें श्री जगन्नाथजीकी रथयात्रा है। श्री जगन्नाथजी भारतके सबसे प्राचीन और रहस्यमय देवता कहे जाते हैं। रथयात्रा श्रीजगन्नाथपुरीका सर्वाधिक प्राचीन उत्सव बताया जाता है। जगन्नाथपुरीकी रथयात्रा कबसे प्रचलित है, उसका भी कोई समय ज्ञात नहीं है। इतना ही कहा जा सकता है कि यह बहुत पुरानी है। इसमें सम्मिलित होनेके लिए प्रतिवर्ष लाखों नर-नारी, बाल-वृद्ध भारतवर्षके कोने-कोनेसे जगन्नाथपुरी पहुँचते हैं। इस अवसरपर श्रीजगन्नाथजीकी अभूतपूर्व काष्ठप्रतिमा एक विशाल सजे-सजाये रथपर प्रतिष्ठित की जाती है। इस रथको बड़े-बड़े रस्सोंसे बाँधा जाता है और सहस्रों भक्तजन उसे खींचकर शोभायात्रा निकालते और रथको निर्दिष्ट स्थानपर पुनः लौटा लाते हैं। इस प्रकार जगन्नाथजीकी रथयात्रा सम्पन्न होती है। फरगूसन आदि विद्वानोंका कथन है कि जगन्नाथजीकी रथयात्राका मूल बौद्धधर्मकी यात्राओंमें निहित है, जब कि कुछ अन्य लोग इसे जैनधर्मकी रथयात्राओंसे जोड़नेमें समीचीनता खोजते हैं। जो कुछ भी तथ्य हो, यहाँ हमें इस विवादमें नहीं पड़ना है। इतना निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि व्रजमें रथयात्राकी प्रेरणाके मूलमें जगन्नाथजीकी रथयात्रा ही मानी जाती है।

महाप्रभु वल्लभाचार्यके उत्तराधिकारी गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजीने संवत् १६१६ विक्रमीमें जगन्नाथपुरीकी तीर्थयात्रा की थी। यहाँकी विचित्र और अनूठी प्रतिमा, जो सदैवसे रहस्यपूर्ण रही है, भारतीय श्रद्धाको बहुत भाती है। भक्तिके प्रचारार्थ इसकी रथयात्रा बड़ी ही समारोहपूर्वक निकाली जाती है। गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी इससे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने रथयात्राका प्रवर्त्तन व्रजमें किया। इस प्रकार व्रजकी रथयात्रा-परम्पराका सूत्रपात विक्रमकी १७वीं शताब्दीके द्वितीय दशकसे माना जाता है। वैष्णव मतमें शनैः-शनैः रथयात्राका प्रचार और प्रसार इसके पश्चात् सम्पूर्ण भारतमें हुआ। इस दशामें रथयात्राका श्रेय वल्लभ-सम्प्रदायको दिया जाता है। अन्य सम्प्रदायोंने इस महत्त्वपूर्ण रथयात्राका अनुगमन किया माना जाता है।

वैष्णव मन्दिरोंमें इस 'रथयात्रा'की तैयारी आषाढ़ शुक्ला द्वितीयासे काफी पहलेसे होने लगती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि वृन्दावनके मन्दिरोंमें पृथक्-पृथक् रथोंके रख-रखावकी परम्परा और सुव्यवस्था है। चूँकि वैष्णव धर्माचार्योंका मूल उद्देश्य भक्तिका प्रचार करना है अतः रथयात्रा शोभाके साथ निकाली जाती है। इन मन्दिरोंमें दो प्रकारकी देवमूर्त्तियाँ विद्यमान हैं। एक तो अचल मूर्तियाँ हैं दूसरी सचल। अचल मूर्तियाँ मन्दिरोंमें ही प्रतिष्ठित रहती हैं। उनको रथयात्रामें नहीं लाया जाता। उनकी अष्टयाम सेवा-पूजा वहीं पर होती है। सचल मूर्त्तियाँ इन्हीं अचल मूर्त्तियोंके साथ विराजमान रहती हैं। रथयात्रा-जैसे उत्सवोंके शुभ और पावन पर्वोंपर सचल मूर्त्तियोंकी शोभायात्रा निकाली जाती है और तदनन्तर ये पुनः अचल विग्रहोंके सान्निध्यमें विराजमान कर दी जाती हैं। श्रीराधारमणजी-जैसे मन्दिरोंमें

चाँदीके रथकी व्यवस्था रहती है। इसमें छह पहिये, चार घोड़े, रास तक चाँदीकी बनी होती है। सिंहासन स्वर्णनिर्मित होता है जिसपर ठाकुरजी विराजमान रहते हैं। पन्द्रह-पन्द्रह सेर तौलके चने, मूँगकी दाल, आम आदि इस अवसर पर भक्तोंके बीच वितरित किये जाते हैं। राधारमणजीमें घोड़ोंकी लगाम सोनेकी होती है। यह विशेष अवसर पर ही होती है। श्रीरंगजीके मन्दिरमें वाहन, गरुड़, घोड़ा तथा अन्यान्य परिकर सोनेका होता है। रंगजीकी रथयात्रा चैत्रमासमें निकलती है। मन्दिरके प्रमुख मार्गके समीप यह रथ वर्ष भरतक बन्द रहता है। यात्राके समय यह निकाला जाता है। ठाकुरजी विराजमान करके अन्यान्य शोभा-परिकरों सहित मन्दिरसे रंगजीकी बगीची तक भक्त लोग खींचकर लाते हैं। सायंकालमें यात्रा लौटती है और प्रत्येक शोभा-झाँकी पुनः अपने-अपने स्थानपर विराजमान कर दी जाती है। रंगजीकी रथयात्रा आषाढ़की रथयात्राके साथ नहीं निकाली जाती। इसका कोई विशेष महत्त्व रहता होगा।

श्रीमदनमोहनजी, गोविन्ददेवजी, रामबाग मन्दिर, श्रीगोपीनाथ मन्दिर, श्रीगोकुलानन्दजी, श्रीराधादामोदरजी, श्रीश्यामसुन्दरजीके मन्दिरोंमें काष्ठके रथों और रस्सियोंका महत्त्व होता है।

मन्दिरोंमें तैयारियाँ पूरी हो जानेपर द्वितीयाके दिन रथोंको महत्त्व और अवसरके अनुकूल विविध विधिसे सजा-सँवारकर, ठाकुरजी विराजमान करके भक्त और दर्शक-समुदायके जयघोषोंके साथ यात्राका शुभ श्रीगणेश किया जाता है। इस अवसर पर देशके कोने-कोनेसे दर्शनार्थी भक्त वृन्दावन आते हैं और ठाकुरजीकी रथयात्राके दर्शनोंका पुण्य लाभ लेते हैं। दर्शनार्थियोंकी संख्या इतनी अधिक होती है कि तिलभर भी खाली ठौर नहीं रहता। रथके आगे विविध कीर्तन-मण्डलियाँ कीर्तन करती चलती हैं। विविध वाद्यों और गायनोंसे समूचा वातावरण एक अभूतपूर्व छटा और भावभीनी महकसे परिपूरित हो उठता है। भक्तगण अश्रुपूरित नेत्रोंसे भावविह्वल हो-हो उठते और ठाकुरजीकी जय-जयकार करते हैं। धीरे-धीरे ये रथ ज्ञानगुदड़ीमें एकत्र हो जाते हैं, जहाँ प्रतिवर्ष इनकी यात्राका अन्तिम स्थान है। क्रम-क्रमसे सभी रथयात्राएँ अपने-अपने मन्दिरोंको लौट जाती हैं। इस प्रकार रथयात्रा सम्पन्न होकर वैष्णव भक्तोंको वर्ष भरके लिए आस्था और आत्मविश्वास संजोकर, उनको भक्तिमें स्नान कराकर उपराम प्राप्त करती है।

●

धर्म शिक्षाका अभिन्न अङ्ग बने

स्व० श्री श्रीप्रकाश

★

द्वितीय महायुद्धकी समाप्तिपर अँगरेजोंकी पहले-जैसी स्थिति नहीं रही जबकि संसार-व्यापी साम्राज्यके वे अधिपति थे। भारतको स्वराज्य देने और उसका संविधान तैयार करनेके लिए संविधान-परिषद बैठानेका निश्चय किया गया। परिषदका निर्वाचन प्रदेशकी विभिन्न सभाओं द्वारा किया गया और दिसंबर, १९४६ में इसका काम शुरू हुआ। मुस्लिम-लीगने आरम्भमें ही परिषदका बहिष्कार कर दिया। उसका कहना था कि मुसलमानोंको अलग पाकिस्तान मिलना चाहिए, क्योकि हिन्दू और मुस्लिम दो पृथक् 'राष्ट्र' हैं।

सुना है कि किसी उच्च-स्तरीय राजकीय समितिमें किसी अँगरेज सदस्यने जिन्ना साहबसे पूछा कि 'यह कैसे सम्भव है कि एक नगरकी एक ही सड़क और गाँवोंमें दो राष्ट्र बगल-बगल रहें ?' जिन्ना साहबका उत्तर था कि 'सड़कोंमें और गाँवोंमें दो पृथक्-पृथक् राष्ट्र रह रहे हैं।'

भारतके अँगरेज शासक जिन्ना साहबके समर्थक रहे और उन्हें हर प्रकारसे उत्साहित करते रहे। जिन्ना साहब कांग्रेसको हिन्दुओंकी संस्था मानते थे और मौलाना अबुल कलाम आजाद तथा श्रीरफी अहमद किदवाई जैसे मुसलमानोंके लिए बहुत अशिष्ट और कटु अपशब्दोंका प्रयोग करते थे।

१९४७ के आरम्भमें श्रीजवाहरलाल नेहरू सीमाप्रान्त गये थे। तब उन्हीं स्थानोंपर, जहाँ पहले गांधीजीका तथा कांग्रेसके नेताओंका भव्य स्वागत हुआ करता था, उनपर पत्थर फेंके गये। बड़ी कठिनाईसे वे वापस आ सके। खान अब्दुल गफ्फार खाँ ने अपनी आत्म-कथामें इस दुराचरणके लिए वहाँके तत्कालीन अँगरेज शासकोंको जिम्मेदार ठहराया है। संविधान-परिषद संयुक्त भारतके लिए संविधान बना रही थी। जवाहरलालजीको सीमा प्रान्तमें जो अनुभव हुआ उससे स्पष्ट था कि पाकिस्तानकी स्थापना अवश्यंभावी है। उसके बाद हमारे देशका विभाजन हुआ। पश्चिम और पूर्वके कई प्रान्तोंको पृथक्कर और कुछको काटकर, नये राष्ट्रका निर्माण किया गया।

जिन्ना साहब 'मुस्लिम राज्य' और 'इस्लामी राज्य'में अन्तर मानते थे। उनके विचारमें 'मुस्लिम राज्य' वह था जहाँ मुसलमानोंका ही आधिपत्य हो और 'इस्लामी राज्य' वह जहाँ

इस्लाम मजहबके आदेशानुसार राज्य किया जाये। पर यह अन्तर उन्हींतक सीमित था। साधारण मुसलमान ही नहीं, पाकिस्तानके प्रधान मन्त्री नवाबजादा लियाकत अली खाँ भी दोनोंमें कोई अन्तर नहीं मानते थे और पाकिस्तानको 'इस्लामी राज्य' कहते थे। जिन्ना साहब स्वयं पाकिस्तानको मुस्लिम-राज्य कहते थे, जैसा कि कराचीमें भारतके उच्च आयुक्तकी हैसियतसे उनसे बात करते हुए मुझे मालूम हुआ।

अब हमारी संविधान-परिषदने विभक्त भारतके लिए ही संविधान बनाना आरम्भ किया। जिन्ना साहब भारतको 'हिन्दुस्तान' कहते थे। हमें 'भारत' शब्दसे बड़ी प्रीति थी। भारतके उत्तराधिकारी होनेका हमें गर्व था, पर अँगरेजोंने हमारे देशका नाम 'इण्डिया' कर रखा था, जो देश-विदेशमें काफी प्रचलित था। हमने भारतके साथ-साथ इस नामको भी स्वीकार किया।

हमारी संविधान-परिषदके सामने जटिल समस्याएँ थीं। हम अपनेको किसी धर्म या समुदाय-विशेषके नामसे नहीं पुकारना चाहते थे। हमारी आबादीमें भिन्न-भिन्न धर्मोंके अनुयायी हैं, जो न जाने कितने सम्प्रदायों और उपसम्प्रदायोंमें विभाजित हैं। हमारी अभिलाषा थी कि सबको ही देशका समान नागरिक माना जाये और उनके अधिकार और कर्त्तव्य एक-से हों।

ऐसी अवस्थामें हमारे संविधान-निर्माताओंके सामने एक ही मार्ग था कि वे अपने राज्यको 'भौतिक राज्य' (सेक्युलर स्टेट) घोषित करें। इस सिद्धान्तको कार्यान्वित करनेका परिणाम यह हुआ कि हमें अपने विद्यालयोंसे धार्मिक शिक्षाका बहिष्कार करना पड़ा। यह समझा गया कि धार्मिक विश्वास और आचरण व्यक्तिगत भावना है। यह मनुष्य और उसके कर्ताके बीचकी बात है और इसकी शिक्षा देने न देनेका भार माता-पिता अर्थात् प्रत्येक व्यक्तिके परिवारपर ही छोड़ देना चाहिए।

यह स्मरण रखनेकी बात है कि उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम चरणमें जब अँग्रेजोंका राज्य सुदृढ़ रूपसे जम गया और बहुत-से ईसाई-शिक्षालय देशमें प्रचलित हो गये अन्य धर्मावलम्बियोंके हृदयमें यह अभिलाषा उत्पन्न हुई कि हमारे धर्मोंको शिक्षाके लिए भी विद्यालय होने चाहिए। उस समय जगह-जगह ऐसे शिक्षालय स्थापित किये गये जिनके नाममें हिन्दू या मुसलमान शब्द लगा हुआ था। वैदिक तथा सनातनधर्म, जैन और बौद्ध नामसे पाठशालाएँ खुलीं। साथ ही बड़ी संख्यामें ईसाई संस्थाएँ काम कर रही थीं। सभी स्थानोंमें धार्मिक वातावरण बनाये रखनेका प्रयत्न किया जाता था।

धर्म या मजहब केवल विश्वासोंके समूह नहीं होते, वे नैतिक सदाचारपर भी जोर देते हैं। भिन्न-भिन्न मजहबोंमें सदाचारके सम्बन्धमें कुछ पार्थक्य होते हुए भी सिद्धान्ततः सभी सत्य, भ्रातृभाव, दानशीलता, दया आदि गुणोंको अपनानेका उपदेश देते हैं।

धार्मिक संस्थाओंमें ये गुण विशेष रूपसे सिखलाये जाते हैं और विद्यार्थियोंके हृदयोंमें इनका संचार किया जाता है। धर्म या मजहबको व्यक्तिगत मामला कहा जा सकता है,

उसका वह सामाजिक रूप अधिक प्रभावशाली है, क्योंकि उसके द्वारा संगठित समाजके सदस्योंका परस्पर व्यवहार निर्धारित किया जाता है। सब माता-पिता इस बातकी चिन्ता नहीं करते कि घरके सब प्राणियोंको प्रतिदिन एकत्र करके किसी प्रकारकी प्रार्थना या धार्मिक कृत्यमें उन्हें लगायें। ऐसी अवस्थामें सार्वजनिक शिक्षालयोंको अपना यह कर्तव्य स्वीकार करना ही होगा कि वे अपने विद्यार्थियोंको नैतिक सदाचारकी शिक्षा विविध बौद्धिक विषयोंके साथ-साथ दें।

बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें स्वराज्य और 'भौतिकवाद'के आनेके पहले हमारे नवयुवक और नवयुवतियाँ शिक्षालयोंसे व्यापक धार्मिक भावनाएँ लेकर निकलती थीं। इन शिक्षालयोंके अतिरिक्त देशमें बहुत-से धर्मोपदेशकोंने आश्रम, मठ आदिकी स्थापना की, जहाँ प्रवचनों द्वारा जन-साधारणको धार्मिक और नैतिक शिक्षा दी जाती थी। जो लोग पाठशालाओं आदिमें शिक्षा नहीं पा सकते थे उनके लिए ये बड़े उपयोगी होते थे। ऐसे धर्मात्माओंको सुननके लिए लोग बड़ी संख्यामें उपस्थित होते थे।

भौतिकवादके प्रादुर्भावसे धर्म और नैतिकताकी भावना कम होती गयी। महात्मा गाँधी कहते थे कि 'मैं ईश्वरके अतिरिक्त और किसीसे नहीं डरता।' एक सार्वजनिक सभामें श्री जवाहरलाल नेहरूने कहा था कि 'मैं ईश्वरसे भी नहीं डरता।' मैंने उनसे कहा कि 'आप जैसे उच्च-पदस्थ व्यक्तिको जन-साधारणसे ऐसा नहीं कहना चाहिए। आप विना किसीसे भय किये बड़ा शुद्ध आचरण कर सकते हैं, किन्तु साधारण स्त्री-पुरुषके लिए आवश्यक है कि वह किसी लौकिक अथवा पारलौकिक शक्तिसे भय करे जिससे वह ठीक रास्ते पर चले।'

हम रोज ही देखते हैं कि अगर चौराहेपर पुलिसवाला नहीं रहता तो मोटर या गाड़ीवाले नजदीकके मोड़से निकल जाना चाहते हैं। पुलिसके भयसे ही वे ठीक रास्तेपर चलते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीतामें कहते हैं—

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।

(जन साधारणके मनको विचलित नहीं करना चाहिए)। महाभारतमें लिखा है—'यदि निर्जन स्थानमें भी कोई यह समझकर कि मुझे कोई देख नहीं रहा है, अनुचित आचरण करे तो उसे यह जान लेना चाहिए कि सूर्य, चंद्र, वायु, जल, अग्नि आदि प्राकृतिक शक्तियाँ उसे देख रही हैं और आवश्यकतानुसार उसके विरुद्ध गवाही देंगी।' ऐसे विश्वाससे मनुष्योंके हृदयमें एक प्रकारका भय रहता है जिससे वे ठीक मार्ग पर चलते रहें। पारलौकिक शक्तिका भय पुलिस और मजिस्ट्रेटके भयसे कहीं अधिक होता है।

आश्चर्यकी बात है कि हमारे शासक और नेतागण 'भौतिक राज्य'की दुहाई देते हैं तथापि हमारे मन्त्री, उच्च अधिकारी, प्रभावशाली और धनवान लोग अपने लड़के-लड़कियोंको ईसाई कानवेंट स्कूलोंमें भेजते हैं। मेरे मित्र श्रीलालबहादुर शास्त्रीने जब अपने घरके बच्चोंको

कानवेंट-स्कूलोंमें भेजा तो मैंने उनसे कहा, 'आप विद्यापीठके स्नातक होते हुए ऐसा कर रहे हैं, यह आश्चर्यकी बात है !' उन्होंने उत्तर दिया कि कानवेंट-स्कूलोंमें अन्य स्कूलोंसे पढ़ाई अच्छी होती है। यह घटना इस बातको प्रमाणित करती है कि धार्मिक शिक्षालयोंको ऐसे लोग भी अधिक पसन्द करते हैं जो 'भौतिकवाद'का प्रतिपादन करते हैं।

'भौतिकवाद' का विशेष रूपमें हिन्दुओं पर बुरा प्रभाव पड़ा है। देशके अधिकतर निवासी हिन्दू हैं, जो अनेक जाति-उपजातियों, संप्रदाय उप-संप्रदायोंमें विभक्त हो गये हैं। उनके आपसके धार्मिक विचारोंमें समता नहीं है। एक ही कुटुम्बके सदस्यगण भिन्न-भिन्न नामोंसे ईश्वरकी आराधना करते हैं और भिन्न-भिन्न धार्मिक कृत्योंका पालन करते हैं। ऐसी अवस्थामें उन्हें धार्मिक शिक्षा देना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि सार्वजनिक संस्थाओंमें उन्हें अपने धार्मिक मौलिक सिद्धान्तोंकी ही शिक्षा दी जायेगी और नैतिक आचरणपर विशेष जोर दिया जायेगा। शिक्षालयोंमें धार्मिक और नैतिक शिक्षाके अभावसे जनसाधारणमें भी धार्मिक और नैतिक बन्धन शिथिल हो गये हैं।

'श्रीमद्भगवद्गीता' में कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः

(जिस प्रकारसे श्रेष्ठजन व्यवहार करते हैं वैसे ही छोटे लोग करते हैं।)

पहले यदि कोई अनुचित आचरण करता था तो उसे अनुचित मानता था, किन्तु अब उसे अनुचित माना ही नहीं जाता। चोरबाजारी और अन्य प्रकारके दुराचरणमें लज्जा अनुभव न कर लोग उनपर गर्व करते हैं। दूसरे लोग भी उसकी प्रशंसा करते हैं। ऐसे दुराचरणोंके विरुद्ध कोई कितना ही शोर करे और उन्हें रोकनेके लिए चाहे कितने ही कानून बनाये जायें किन्तु वे तबतक दूर नहीं हो सकते जबतक सर्वसाधारणके हृदयोंमें उच्च आध्यात्मिक भावोंका संचार नहीं कराया जाता। हमारे विद्यालयोंमें धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती और धर्मोपदेशकोंको उत्साहित नहीं किया जाता। यदि हम इस आवश्यक कार्यको माता-पिता और परिवारोंके ऊपर ही छोड़ देंगे तो इसमें सन्देह नहीं कि जो धार्मिक शिक्षा दी जायेगी वह बहुत ही संकीर्ण और कट्टर प्रकारकी होगी। उससे खराबी दूर होनेके बदले और बढ़ेगी और सांप्रदायिक तनातनी तथा समाज-विरोधी कार्योंमें वृद्धि होगी।

●

भीष्म-प्रतिज्ञा

आचार्य श्रीसीताराम चतुर्वेदी

☆

आज मुझे यही सन्तोष है कि पिताजी सुखी हैं, प्रसन्न हैं। मेरे लिए क्या यह कम गौरवकी, कम सौभाग्यकी, कम गर्वकी बात है ?

मैंने प्रतिज्ञा इसलिए नहीं की है कि वे राजर्षि हैं, हस्तिनापुरके राजा हैं, इतने विशाल साम्राज्यके स्वामी हैं। मैंने इसलिए प्रतिज्ञा की कि वे मेरे पिता हैं······वे पिता, जिन्होंने मुझे यह साधन-धाम मनुष्य तन दिया, जिन्होंने पृथ्वीपर जन्म लेनेके क्षणसे आजतक निरन्तर पालन-पोषण किया, जिन्होंने अनवरत चेष्टा करके मेरे सुख और सुविधाका ध्यान रखते हुए कभी मेरे मुखपर विषादकी रेखा नहीं आने दी। उनके लिए यदि मैंने यह छोटी-सी प्रतिज्ञा कर भी डाली तो कौन हिमालय सिरपर उठा लिया। इतनी-सी तुच्छ बातपर लोग मुझे क्यों इतना महत्त्व दे रहे हैं, क्यों मुझे भीष्म कह रहे हैं। अपने उन स्नेहमय पिताजीके लिए क्या मैं इतना भी न करता······।

आज जब उन्होंने हर्षसे मुझे अपने हृदयसे लगाकर मेरे नत शिरपर अपना उन्नत भाल स्थिर करके, मेरे पृष्ठपर धनुषकी प्रत्यंचाके चिह्नसे सुशोभित अपना पौरुषपूर्ण हाथ फेरकर मुझे वरदान दिया—'मेरे निष्पाप पुत्र ! तुम जबतक जीवित रहना चाहोगे तबतक मृत्यु तुम्हारा स्पर्श तक नहीं कर सकेगी। आजसे तुम इच्छामृत्यु हो। आजसे मृत्यु तुम्हारे भ्रूभंगकी दासी होकर तुम्हारी आज्ञा पालन करेगी।' तब उनका सारा वात्सल्य मुझपर उँढल पड़ा था।

पर क्या मैंने वरदानके लोभसे प्रतिज्ञा की थी ? नहीं, उनकी कृपा, उनके अपरिमित वात्सल्य और उनके सात्त्विक स्नेहसे मैं विह्वल हो उठा, रोमांचित हो उठा। मैंने इसलिए प्रतिज्ञा ही नहीं की थी कि पिताजी मुझे वरदान दें, मैं इच्छामृत्यु हो जाऊँ और इस नश्वर संसारमें अनन्त कालतक अपना अनश्वर शरीर लेकर इसका निरन्तर पोषण करता रहूँ।

आज जब मैं निषादराजके यहाँसे चलने लगा तो मेरे चारों ओर खड़े हुए क्षत्रिय मेरी ओर संकेत कर-करके कह रहे थे—'यह भीष्म है।' इसमें भीष्म होनेकी क्या बात थी। मैंने केवल पुत्रका धर्म पालन किया है, और वह भी कोई बहुत बड़ा नहीं। एक मेरे अविवाहित रहनेका संसारमें महत्त्व क्या, संसारमें न जाने कितने सहस्र लोग आते हैं और अविवाहित चले जाते हैं। किन्तु उनमेंसे तो किसीके नामके साथ 'भीष्म' शब्द नहीं लगता······।

मैंने माता सत्यवतीको देखा है। वह रूप, वह लावण्य, वह सुन्दर ढला हुआ शरीर, जिसमेंसे सुगन्धका प्रभञ्जन फूटा पड़ता है···मानो ब्रह्माने संसारका समस्त सौन्दर्य, समस्त सौकुमार्य, समस्त औदार्य उनके शरीरमें ला भरा है। ऐसी तेजस्विनी माता पाकर किस पुत्रको हर्ष नहीं होगा। पिताजी धन्य हैं जिन्होंने मेरे लिए ऐसी दिव्य माताका वरण किया है। मैं उनका ऋणी हूँ, उनका उपकार मानता हूँ। कितने कोमल चरण हैं माता सत्यवतीके ? मानों सहस्रदलकी सम्पूर्ण स्निग्धता और कोमलता उनके चरणोंके रूपमें साकार हो गयी है। उन्हें देखकर यही जी करता है कि नित्य अपना मस्तक उनके चरणोंमें डालकर अनायास मुक्त हो जाऊँ।

और उस निषादराजको तो देखो ! उसके मनमें मेरे ही प्रति सन्देह उठ खड़ा हुआ। उसने मुझे कितना कलुषित, कितना नीच, कितना स्वार्थी, कितना कृतघ्न समझा होगा। पर उसका क्या दोष। संसारके कुटिल इतिहासने क्या ऐसे कम उदाहरण उपस्थित किये हैं जहाँ धनके लिए, राज्यके लिए, पिताने पुत्रके, भाई ने भाई के, और पत्नीने पतिके लिए यमका द्वार न खोल दिया हो। और फिर राज्यका लोभ ? कितना प्रबल होता है राज्यका लोभ। सब तो रामके भाई भरत नहीं हो सकते, जिन्होंने सम्मुख उपस्थित राज्यलक्ष्मीको ठीकरेकी भाँति ठुकरा दिया। राज्य और सम्पत्तिका लोभ किसे विचलित नहीं कर देता। यदि निषादराजने सन्देह किया तो उसका कोई दोष नहीं है। उसे भय था कि माता सत्यवतीके गर्भसे जो पुत्र होगा उसका मैं शत्रु हो जाऊँगा। वह समझता था कि संसारमें मैं ही सबसे बड़ा पराक्रमी हूँ और मैं माता सत्यवतीके पुत्रको शान्तिसे न रहने दूँगा। कितनी भूल थी उस निषादराजकी। मनुष्यका कितना बड़ा मिथ्या अभिमान है कि वह अपनेको सबसे अधिक पराक्रमी, सबसे अधिक बुद्धिमान्, सबसे अधिक वीर समझता है। यह उसका भ्रम है, उसकी मूर्खता है, उसकी अज्ञानता है। इतने बड़े बलशाली हाथीको एक छोटी-सी चींटी नाकमें घुसकर मार डालती है। साँसका एक झटका मनुष्यको निस्तेज कर देता है। और फिर भी मनुष्य अभिमान करता ही जाता है ?

और फिर माता सत्यवतीके गर्भसे जो बालक होता वह क्या मुझसे कम पराक्रमी होता ?

फिर भी वह निषादराज था। उसने सत्संग नहीं किया था। उसके हृदयमें यदि मेरे प्रति सन्देह हो भी गया तो कोई आश्चर्य नहीं, कुछ अस्वाभाविक नहीं। और फिर अपनी कन्या के भविष्यके लिए उसका सोचना ठीक भी था।

निषादराजके यहाँ मेरे साथ कितने क्षत्रिय कुमार उपस्थित थे। सब मेरा मुँह देख रहे थे कि मैं क्या उत्तर देता हूँ। उन्हें वह कहाँ आशा थी कि सहसा मेरे मुखसे यही निकल पड़ेगा—'निषादराज ! मैं शपथपूर्वक सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसके गर्भसे जो पुत्र होगा, वही हमारा राजा होगा। आजतक ऐसी कठोर प्रतिज्ञा न तो किसीने की, न भविष्यमें भी आशा है कि कोई ऐसी प्रतिज्ञा करे।

किन्तु इतनेपर भी निषादराजके मुखपर छायी हुई सन्देहकी रेखाएँ कम नहीं हुईं। मैं देख रहा था कि उसके ओठ कुछ कहनेके लिए फड़फड़ा रहे थे। उसे मेरी प्रतिज्ञासे सन्तोष

नहीं हुआ। मेरी समझमें नहीं आया कि श्वेत पलकोंके नीचे छिपी हुई उसकी अधमुंदी आँखोंमें अभी तक अविश्वास क्यों झलक रहा है। किन्तु कितना भोला था निषादराज! कपट तो उसे छूतक नहीं गया था। इसलिए उसने भोलेपनके साथ कह दिया—'युवराज! आपने सत्यवतीके लिए जो प्रतिज्ञा की है उसके सम्बन्धमें मुझे तनिक-सा भी सन्देह नहीं रहा। आप क्षत्रिय हैं। आपका वचन ध्रुवसे भी अधिक स्थिर और दृढ़ है। किन्तु यदि आपका पुत्र सत्यवतीके पुत्रसे राज्य छीनने लगे तो?'

मेरा पुत्र यदि सत्यवतीके पुत्रसे राज्य छीन ले तो?······इस प्रश्नका मेरे पास क्या उत्तर था? अभी मेरा विवाहतक नहीं हुआ, फिर अपने पुत्रोंकी ओरसे मैं उसे क्या वचन दे सकता था? कैसे दे सकता था? भविष्यमें मेरे पुत्र कैसा व्यवहार करेंगे यह मैं कैसे कह सकता था? क्षण भरके लिए मेरी बुद्धि अवश्य कुंठित हो गयी थी। किन्तु तत्काल मैंने देखा अपनी माता गंगाजीका दिव्य स्वरूप, वे मकरपर चढ़ी हुई अपने हाथमें दिव्य कमल लिये हुए मेरे पास आयीं, मेरे हृदयका ताप, परिताप, सन्ताप सब अपनी धारामें बहा ले गयीं और मेरे कानोंमें न जाने क्या मंत्र देकर चुपकेसे चली गयीं। मेरे चारों ओर खड़े हुए क्षत्रिय-कुमार मुँह बाये मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहे थे। मेरा उत्तर सुननेके लिए वे निषादराजसे भी अधिक उत्सुक दिखाई दे रहे थे। ठीक इसी कौतुहलकी वेलामें भगवान् प्राचेतसकी वाणीके समान मेरी समस्त सात्त्विक भावनाएँ प्रतिज्ञा बनकर फूट पड़ीं, उन क्षत्रियोंके भरे समूहके सम्मुख अपनी दक्षिण भुजा उठाकर मैंने धीर-गम्भीर स्वरमें कह दिया—'क्षत्रियो! मैंने अपने पिताके राज्यका परित्याग तो पहले ही कर दिया है किन्तु आज सन्तानके लिए भी मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है।'

और फिर, जैसे, विश्वमें व्याप्त सम्पूर्ण दैवी शक्तियाँ अत्यन्त उल्लाससे मुझे प्रेरित कर रही हों, इस प्रकार मैं घूम गया निषादराजकी ओर। मैं बोल उठा—आजसे मैं अखण्ड ब्रह्मचर्य का व्रत लेता हूँ। अपने पिताजीके आशीर्वादसे और अपने ब्रह्मचर्यके प्रतापसे मैं नि:सन्तान होनेपर भी अक्षय लोक प्राप्त करूँगा।'

यह मुझसे किसने कहलवाया था? मेरे हृदयमें किसने ऐसी अद्भुत शक्ति भर दी थी? क्षण भरमें कुछ ऐसा सुनता रहा मानों वीणाके सम्पूर्ण मधुर स्वरोंका तिरस्कार करनेवाली सैकड़ों-सहस्रों श्रुतियाँ 'धन्य है! धन्य है!!' गा उठी हों। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों नन्दन काननके मन्दारके सद्यः उतारे हुए सहस्रों सुमन किन्हीं अदृश्य हाथोंने मेरे शरीरपर सहसा बरसा दिये हों और यह तो मैंने अपने कानोंसे सुना कि वहाँ उपस्थित सब क्षत्रियोंने एक स्वरसे कहा—'यह भीष्म है। इसका नाम भीष्म होना चाहिए।'

किन्तु मैं तो निषादराजका उत्तर सुनना चाहता था। उस कोलाहलमें वृद्ध निषाद-राजका क्षीण स्वर बहुत देर तक खुला नहीं। मैं देख रहा था कि मेरी प्रतिज्ञा सुनकर वह काँप रहा था। उसका सारा शरीर रोमांचित हो गया था, उसके नेत्रोंमें हर्षके विन्दु झलक आये थे। उसका कंठ गद्गद हो गया था और उसके मुखसे केवल इतना ही निकला—'मैं कन्या देता हूँ।'

ओह ! कितनी प्रसन्नता हुई मुझे यह अमृतमय शब्द सुनकर, मानों मैंने विश्वकी समस्त विभूति, विश्वकी सिद्धियाँ, योगियोंकी भूमा एक साथ प्राप्त कर ली हो। मैं हर्षसे, उल्लाससे, उत्साहसे नाच उठा। मेरा मन लहराने लगा, कितने प्रसन्न होंगे मेरे पिताजी, जब वे सुनेंगे कि मैं उनके लिए सत्यवतीजीको ले आया हूँ।

और इसके पश्चात् क्या मैं एक क्षण ठहर सकता था ? मैंने झट अपनी नवमाताके चरणोंमें सिर टेक दिया। उन्होंने मेरे सिरपर अपने कोमल वात्सल्यमय हाथ रक्खे। मेरी प्रार्थनापर वे रथपर आरूढ़ हो गयीं और मैं सारथीको उतारकर, अपने सब साथियोंको वहीं छोड़कर, स्वयं उस रथको वेगसे दौड़ाता हुआ हस्तिनापुर चला आया।

रथ बाहर ही स्थापित करके मैं सीधे चला गया अपने पिताजीके कक्षमें। वे बैठे हुए थे शान्त, मौन, उदास, चिन्तित और व्यथित-से। मैंने दौड़कर उनके पैर पकड़ लिये। एक साँसमें कह गया—'देव ! मैं माता सत्यवतीको लिवा लाया हूँ।' ओह ! कितना हर्ष हुआ उन्हें। वे आश्चर्य और उल्लासके साथ उठ खड़े हुए। रथपर माता सत्यवतीको देखकर उन्हें कितना आह्लाद हुआ। वे सीढ़ियोंसे उतर आये; माता सत्यवतीका हाथ पकड़कर उन्होंने रथसे उतारा। मुझे उन्होंने अपने वक्षसे चिपकाकर वरदान दे डाला। मेरे पूज्य पिताजी अपने हाथसे सहारा देकर माता सत्यवतीजीको प्रासादमें ले गये। मैं स्वप्नमें उलझ गया कि माता सत्यवतीके समान संसारमें मेरी माता बनने योग्य दूसरी कोई नारी हो भी सकती है या नहीं। अपनी माता गंगाके पश्चात् यदि मैंने उनके सब गुण देखे तो माता सत्यवती में ही।

मैंने यह सब क्यों किया ? उसका भी कारण मैं ही था। इधर कुछ दिनोंसे मेरे पिताजी उदास रहने लगे थे। मैंने सुना तो मेरा हृदय स्वयं मुझे धिक्कारने लगा—'क्यों देवव्रत ! तुम गंगाके पुत्र हो न ? तुम क्षत्रियकी संतान हो न ? और तुम्हारे रहते तुम्हारे पिता चिन्तित रहें, उदास रहें, दुखी रहें। धिक्कार है तुम्हें। धिक्कार है तुम्हारे जीवनको।' और मेरा हृदय ही नहीं, सम्पूर्ण सृष्टि, जड़-चेतन, चर-अचर, तृण-पत्ते तक मुझे धिक्कारने लगे हैं। मेरा चित्त विक्षुब्ध हो उठा। मैंने पिताजीसे जाकर पूछा—'आप क्यों चिन्तित हैं पिताजी। कृपया मुझे अपना रोग बताइए, मैं उसका प्रतीकार करूँगा।'

मेरे पिताने मुझे गोदमें बैठा लिया। वे मुझे कैसे समझाते कि उन्हें कौन-सा रोग है। मेरे कुतूहलकी निवृत्ति नहीं हो पायी।

मैं वृद्ध मंत्रीसे जाकर पूछा। वृद्ध मंत्रीने कहा—

'युवराज ! वे तुम्हारे कारण दुखी हैं।'

'मेरे कारण ?'

'हाँ, तुम्हारे कारण।'

और फिर उस राजभक्त, स्वामिभक्त मंत्रीने इस प्रकार तन्मय होकर मुझे कथा सुनानी प्रारम्भ की मानो इस राष्ट्रिय विपत्तिने उसके हृदयको मथ डाला हो···

एक दिन राजर्षि शान्तनु यमुनातटपर विचरण कर रहे थे। इसी समय उन्हें प्रतीत हुआ मानो विश्वका समस्त सौरभ विधाताने उसी यमुना-कूलपर उँडेल दिया हो। उनकी

समक्षमें नहीं आ रहा था कि यह गन्ध कहाँसे आ रही है। उन्होंने तत्काल देखा कि पास ही नौकापर देवांगनाके समान एक सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या पतवारके सहारे बैठी हुई है। राजर्षि शान्तनुने पास पहुँचकर पूछा—'क्यों कल्याणि। तुम किसकी कन्या हो? कौन हो? यहाँ कैसे रहती हो?'

उस कन्याने कहा—'मैं निषाद-कन्या हूँ। पिताकी आज्ञासे धर्मार्थं नाव चलाती हूँ। जो साधु, महात्मा, गृहस्थ यमुना पार करने जाना चाहते हैं उन्हें लेकर पार कर देती हूँ।'

ज्यों ही उनके मुखसे निकला—'निषाद-कन्या।' मेरा मन घृणासे भर गया था। 'पिताजी राजर्षि होकर निषाद-कन्यासे विवाह करेंगे?'

वृद्ध मंत्री अपनी तीव्र दृष्टिसे मेरा मानसिक विक्षोभ ताड़ गये। उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—'वह निषाद-कन्या नहीं है। वह अभिशप्त अप्सराकी कन्या है जो मछली बनी जलमें पड़ी थी। उसीके उदरसे राजा वसुने यह कन्या प्राप्त की। इसके शरीरसे मत्स्यकी ऐसी तीव्र गन्ध आती थी कि राजा वसुने उसे निषादराजको सौंप दिया—पालन करनेको। महर्षि पराशरके प्रतापसे वह योजनगन्धा हो गयी। और तबसे न जाने कितने राजकुमार और ऋषि उसे प्राप्त करनेको लालायित हैं।' मेरा सन्देह दूर हो गया।

वृद्ध मंत्रीजी कहते चले जा रहे थे—'उसके शरीरसे फूटकर चारों ओर गमक उठनेवाली मादक गन्धपर, उसके सुन्दर मुखसे फूट पड़नेवाले मधुर वचनोंपर, उसकी भोली-भाली भाव-भंगिमापर और उसके अनिन्द्य रूप-दीपपर राजर्षि शान्तनु पतंग बन गये। उन्होंने उसके पिता निषादराजके पास जाकर उस कन्याके लिए याचना की। निषादराजने उनसे यह प्रतिज्ञा करानी चाही कि इसके गर्भसे जो पुत्र हो वही आपके पश्चात् राज्यका अधिकारी हो। पर राजर्षि शान्तनु आपके रहते हुए ऐसी प्रतिज्ञा कैसे कर सकते थे? कभी नहीं। वे चले आये तभीसे……।'

वृद्ध मन्त्रीने वाक्य समाप्त किये बिना ही जो लम्बी साँस खींची थी वह मुझे अभीतक स्मरण है। कितनी वेदना थी उस साँसमें! और मैंने देखा था उन वृद्ध मन्त्रीके नेत्रोंसे ललकते हुए आँसू, जिनके मुक्ताक्षरोंमें मैं स्पष्ट पढ़ पाया था—पिताजीमें उनकी एकान्त निष्ठा और मेरे प्रति महाराज शान्तनुका अगाध और निःसीम वात्सल्य! मेरे हृदयसागरमें ज्वार उठ खड़ा हुआ—'आह! मेरे कारण मेरे पिताजीको कष्ट हो रहा है। वे क्षीण हुए जा रहे हैं और मैं राजसी भोग भोग रहा हूँ!'

और साथ ही उस निषादराजपर भी क्रोध आया—उसका यह दुस्साहस! मेरे पिताजी प्रार्थना करें और वह अस्वीकार कर दे!

बस, वहाँसे उठकर अपने साथ कई क्षत्रियोंको साथ लेकर मैं निषादराजके यहाँ पहुँच गया। क्या अपने उस करुणामय, कृपामय, वात्सल्यमय पिताके लिए इतनातक न करता कि एक जीवन ब्रह्मचर्यपूर्वक बिता सकता। श्रवणकुमारने अपने माता-पिताको प्रसन्न करनेके लिए उन्हें काँवरमें बैठाकर सब तीर्थोंका दर्शन कराया। मुझे तो इतना भी नहीं करना था। मेरा तो उसके सामने बहुत छोटा-सा, नन्हा-सा त्याग है। लोग व्यर्थ मुझे इतना महत्त्व दे रहे हैं। पर हाँ, मुझे यह सन्तोष अवश्य है कि मेरे पिताजी अब प्रसन्न हैं, सुखी हैं।

पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥

(पिता ही स्वर्ग है, पिता ही धर्म है, पिता ही सबसे बड़े तप हैं, यदि पिता प्रसन्न हो गये तो समझ लूँगा सब देवता मुझपर प्रसन्न हो गये।)

प्रतिलोम-कथा-कौशल (रिवर्ट्स प्लाट टेकनीक)में कथा उल्टी चलती है जैसे इस कथामें प्रतिज्ञाकी बात पहले आ गयी है और जहाँसे कथा आरम्भ हुई वह सबसे अन्तमें आती है। आपने विचारात्मक निबन्ध (रिफ्लेक्टिव ऐसेज़) बहुत पढ़े होंगे किन्तु विचारात्मक, आत्मचिन्तनशैली (रिफ्लेक्टिव सेल्फ ऐनेलिसिस स्टाइल)में कहानियाँ कम पढ़ी होंगी। आजकलके विदेशी मनोवैज्ञानिक, कहानी-लेखक इस शैलीको ही सर्वश्रेष्ठ कथाशैली मानते हैं। किन्तु इस शैलीको चेतना-धारा (स्ट्रीम ओफ् कौशसनेस) शैलीसे भिन्न मानना चाहिए जिसमें कहानीका क्रम पूर्णतः असम्बद्ध होता है और जिसका प्रयोग तथ्यातिरेकवादी (सररीयलिस्ट्स) लोग अपनी कहानियोंमें करते हैं। उसे वास्तवमें चेतनधाराशैली न कहकर उन्मत्त प्रलापशैली कहना चाहिए, जो इस आत्मचिन्तन-प्रणालीसे सर्वथा भिन्न और दरिद्र भी होती है।

•

नन्द-नन्दनको भजो

असरनको एकै सरन श्रीहरि करुना धाम।
'राम' अतः दुखमें बिवस मुखते निकसत नाम॥ १॥
जीवनको बिसराम थल माधव नन्दकिसोर।
सहजहि गति सरितानकी सतत सिन्धुकी ओर॥ २॥
तजि अनित्य अरु असुखमय सारहीन संसार।
भजिय नित्य आनन्दमय मोहन नन्द-कुमार॥ ३॥
मारन आयी पूतना दियो ताहि निर्वान।
को केसव इव लोकियत अतिसय कृपा निधान॥ ४॥
द्विजको दारिद दाहि पुनि चाउर चाभेउ चाहि।
सखि-वत्सल यदुपति सरिस को उदार जगमाहिं॥ ५॥

'राम'

•

सर्वात्मा सर्वेश्वर भगवान्की विभूतियोंका तत्त्व-दर्शन

श्री गुरुदत्त

★

मानव-समाजमें दो प्रकारके लोग मिलते हैं। साधारण भाषामें उनको अच्छे और बुरे कहा जाता है। अच्छे और बुरोंको श्रीमद्भगवद्गीताकी परिभाषामें दैवी और आसुरी स्वभाव वाले माना जाता है।

गीताके ध्यानपूर्वक अध्ययन और मनन करनेसे पता चलेगा कि दैवी स्वभाव अर्थात् प्रवृत्ति उनकी होती है जो इस शरीरके अतिरिक्त तथा इस दृश्य जगत्के अतिरिक्त किसी अन्य तत्त्व अथवा तत्त्वोंकी उपस्थितिको स्वीकार करते हैं और उस स्वीकारोक्तिके अनुरूप अपना आचरण बनाते हैं। इसके विपरीत आसुरी स्वभाव उनका हो जाता है, जो इस शरीरको ही सब कुछ मानते हैं और इसके पूर्व तथा उपरान्त प्राणीका कुछ भी रह गया नहीं मानते।

भगवान् श्रीकृष्ण इन आसुरी प्रवृत्तिवालोंके विषयमें इस प्रकार कहते हैं।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥ भ० गी० ७–१५

जिनकी बुद्धि इस व्यक्त (दृश्य) जगत्के सुखोंसे हरी जाती है तथा जो दुष्ट कर्म करने वाले मूढ़ मेरे (परमात्मा) को स्मरण नहीं करते वे आसुरी स्वभावको धारण करते हैं।

आसुरी स्वभाववालोंके विषयमें भी लिखा है। वे ऐसा मानते हैं।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम्। भ० गी० १६–८

मनुष्यकी सृष्टि परस्पर (पुरुष-स्त्री) के संयोगसे होती है। यह केवल भोगोंके भोगनेके लिए ही बनी है। अन्य कुछ मतलब नहीं। इसका (अपनेके अतिरिक्त) कोई आश्रय नहीं। शरीरके अतिरिक्त भोक्ता कोई नहीं।

इसका अभिप्राय यह है कि आसुरी प्रवृत्ति उनकी हो जाती है, जो जीवनको जन्मसे मरण पर्यन्त ही मानते हैं और आत्म-तत्त्वको स्वीकार नहीं करते। इसपर प्रश्न उत्पन्न होता है कि वह आत्म-तत्त्व है कहां ? इसी विषयपर लिख रहे हैं।

पूर्व इसके कि हम इस विषयपर कुछ लिखें हम एक अन्य विषयपर अपना मत स्पष्ट कर देना चाहते हैं। भगवद्गीतामें 'मां, मम, मया' इत्यादि प्रथम वचनमें लिखे वाक्योंका भाव परमात्मावाचक है। हम मानते हैं कि भगवद्गीता परमात्माका ज्ञान है, परन्तु यह इस प्रकार नहीं जैसे साधारण लोग मानते हैं। साधारण हिन्दू भगवान् श्रीकृष्णको साक्षात् परमात्मा मानते हैं। प्राचीन मीमांसकोंका यह मत है कि महापुरुषोंके उपदेश उनमें बैठे परमात्मासे ही दिये जाते हैं। परमात्मा स्वयं उनमें बैठकर मानव-कल्याणके लिए कह रहे होते हैं। महापुरुष उस समय योगयुक्त अवस्थामें होते हैं। इसके अनुसार हमारा मत यह है कि भगवद्गीताका प्रवचन भगवान् श्रीकृष्णने योगयुक्त होकर किया था।

श्रीकृष्ण एक मुक्त जीव थे जो, उनके अपने कथनानुसार, पृथिवीपर हो रही धर्मकी ग्लानि देखकर आते हैं, साधुओंका परित्राण करते हैं तथा दुष्टोंका नाश करते हैं।

गीता कहते समय योगयुक्त होनेकी बात भगवान्‌ने स्वयं मानी है। युद्धके बहुत पीछेकी बात है। एक समय अर्जुनने भगवान्‌से गीताके उपदेशको पुनः सुननेकी इच्छा प्रकट की थी। तब भगवान्‌ने वैसा ही प्रवचन दुहरानेमें अपनी असमर्थता प्रकट की थी। महाभारतमें इस वार्तालापका उल्लेख है। लिखा है।

अबुद्ध्या नाग्रहीर्यस्त्वं तन्मे सुमहदप्रियम्
न च साद्य पुनर्भूयः स्मृतिर्मे सम्भविष्यति।
स हि धर्मः सुपर्याप्तो ब्रह्मणः पदवेदने
न शक्यं तन्मया भूयस्तथा वक्तुमशेषतः॥

महा भा०—अश्व० १६-१०, १२

इसका अभिप्राय यह है। भगवान् कृष्णने अर्जुनको कहा, 'तुमने अपनी नासमझीके कारण उस उपदेशको स्मरण नहीं रखा। यह बात मुझे बहुत अप्रिय है। उन बातोंका अब पूरा-पूरा स्मरण होना सम्भव नहीं।

वह उपदेश ब्रह्म-पदकी प्राप्तिके लिए कहा गया था। साराका सारा उसी रूपमें दुहराना मेरे वशकी बात नहीं। इसका कारण यह है कि उस समय मैं—

परं हि ब्रह्म कथितं योगयुक्तेन तन्मया। महा भा० १६-१३

—योगयुक्त अवस्थामें था। उस (परमात्मा)में तन्मय होकर उपदेश किया था।

अतः इस (७-१५)में और आगे लिखे जानेवाले श्लोकोंमें जहाँ भी भगवान्‌ने प्रथम वचनमें कुछ कहा है, वहाँ यह समझना चाहिए कि भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा परमात्मा ही कह रहे हैं।

इसी कारण हमने उक्त श्लोक (७-१५) में 'माँ' के अर्थ परमात्माके किये हैं।

हमने बताया है कि असुर वे हैं जो इस संसारमें किसी भी प्रकारके आत्मतत्त्वको स्वीकार नहीं करते। ऐसा मानते हुए वे अपना व्यवहार बनाते हैं। इसपर हमने लिखा है कि आत्मतत्त्व है कहाँ ? वह दिखाई क्यों नहीं देता ?

भगवान् कहते हैं।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ भ० गी० ७-२५

योगमाया (व्यक्त प्रकृति) से ढका हुआ परमात्मा सबको प्रत्यक्ष नहीं होता। मूढ़ लोग अजन्मा परमात्माको नहीं जानते।

अनेकों प्रमाण दिये जा सकते हैं जिनसे पता चलता है कि मनुष्य ईश्वरको अपने अन्तश्चक्षुओंसे देख सकता है। इसके लिए उसे विशेष प्रयत्नकी आवश्यकता रहती है। भगवान्‌ने कहा है—

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥

भ० गी० ७-२९,३०

जो लोग परमात्माकी शरणमें जाकर यत्न करते हैं वे सम्पूर्ण अध्यात्म एवं कर्मको जान जाते हैं।

वे अधिभूत, अधिदैव और अध्यात्म-सहित परमात्माको जान लेते हैं। ऐसे मुक्त चित्त-वाले पुरुष अन्तकालमें परमात्माको जान जाते हैं।

परमात्माका आश्रय लेनेका अभिप्राय है कि उसको जाननेकी उत्कट जिज्ञासा रखनी। यह तो सदैव और प्रत्येक कार्यकी सिद्धिके लिए, प्रयास करते समय, होनी चाहिए। जिज्ञासाके विना तो सांसारिक कार्य भी सिद्ध नहीं हो सकते (ब्रह्मको जाननेके लिए तो इसकी और भी अधिक आवश्यकता है। किसी भी व्यक्त अथवा अव्यक्त पदार्थको जाननेके लिए दृढ़ संकल्पकी आवश्यकता रहती है। संकल्प विना यत्न चल ही नहीं सकता। यही आश्रयका प्रयोजन है।

परमात्माका विवेचन करते हुए, भगवान् श्रीकृष्णने बार-बार इस बातको कहा है कि वह भूतोंमें (प्राणियोंमें), सब देवोंमें (प्राकृतिक शक्तियोंमें) और सब कर्मोंमें उपस्थित होता है। वह सबको उत्पन्न करनेवाला और नष्ट करनेवाला है।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥
मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

भ० गी० ७-५, ६, ७

श्लोक (७-४)में प्रकृतिके आठ रूपोंका वर्णन किया गया है। उक्त श्लोकोंमें बताया है कि यह (अष्टधा प्रकृति) अपरा है अर्थात् इन्द्रियगोचर है। इससे परे प्राणियोंमें जीवात्मा है वह परा है, अर्थात् इन्द्रियगोचर नहीं है।

इन दोनोंसे भी परे सम्पूर्ण प्राणियों और सम्पूर्ण जगत्को धारण किये हुए एवं उत्पन्न और प्रलय करनेवाला एक अन्य है। वह परमात्मा है। उससे परे कुछ नहीं। यह सम्पूर्ण जगत् मालाके मनकोंकी भाँति परमात्मा रूपी सूत्रसे पिरोया हुआ है।

कैसे पिरोया हुआ है। भगवान्‌ने समझाया है—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

भ० गी० १५-१६, १७, १८

प्राणी-जगत्में दो पदार्थ उपस्थित हैं। एक क्षर और दूसरा अक्षर। क्षर (नाशवान्) तो शरीर है और अक्षर (अजर-अमर) शरीरकी गुहामें स्थित (जीवात्मा) है।

उत्तम पुरुष इन दोनोंसे अलग है। यह (उत्तम पुरुष) तीनों लोकोंमें प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है। उसे अविनाशी परमात्मा कहा जाता है। वह परमात्मा, जड़ वर्ग—जो नाशवान् है, उससे वह सर्वथा भिन्न है और अविनाशी (जीवात्मा)से भी सर्वथा भिन्न है, अर्थात् उत्तम है। इसलिए इसको संसारमें और वेदोंमें पुरुषोत्तम नामसे स्मरण किया जाता है।

यह सांख्यका मत है कि प्रकृतिके आदि रूपमें परमाणु होते हैं। प्रत्येक परमाणुमें सत्त्व, रजस, तमस गुण साम्यावस्थामें होते हैं। इन गुणोंकी साम्यावस्था परमात्माके भंग करनेसे भंग होती है। तब इन गुणोंके घात-प्रतिघातसे यह व्यक्त जगत् बनता है। ऐसा कहा है।

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥
ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥
योऽसावतीन्द्रियोऽग्राह्यःसूक्ष्मोऽव्यक्तःसनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ॥
सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाःप्रजाः।
अप एव ससर्जाऽऽदौ तासु बीजमवासृजत्॥

मनु० १-५, ६, ७, ८

यह (प्रकृति) पहिले अन्धकारमय थी। वह जानी जा सकने योग्य नहीं थी। इसमें किसी प्रकारके चिह्न भी नहीं थे। यह तर्कसे भी परे थी। यह सोये हुएकी भाँति पड़ी थी।

इस (सृष्टि-उत्पत्तिके) समय स्वयंम्भू भगवान्, अव्यक्त (इन्द्रियोंसे न जानने योग्य), अपरिमित सामर्थ्यंवाला, अन्धकारको दूर करनेवाला पंचभूतादिको प्रकट करनेके लिए स्वयं प्रकट हुआ।

यह भगवान् (परमात्मा) अतीन्द्रिय, सूक्ष्म, अव्यक्त, नित्य और सब प्राणियोंके आत्मा, अचिन्त्य स्वयं प्रकट हुआ।

यह इस कारण कि परमात्माने भिन्न-भिन्न प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न करनेके लिए 'अप' उत्पन्न किया और फिर उसमें बीज डाला।

अभिप्राय यह कि परमात्माने भिन्न-भिन्न प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न करनेके लिए पहिले प्रकृतिसे अप उत्पन्न किया और फिर उसमें बीज डाला।

भगवान् कृष्णने गीतामें भी इसी प्रकार लिखा है।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।

भ० गी० ७-१०

अर्थात् सब भूतोंका परमात्मा ही सनातन बीज है।

इस सबका अभिप्राय यह है कि त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें गुणोंकी साम्यावस्था भंग करनेके लिए परमात्मा स्वयं प्रकट होता है। परमात्माके प्रकट होनेसे सबसे प्रथम 'अप' उत्पन्न होता है। फिर इस अपमें परमात्मा बीज डालकर पंचभूतादि सम्पूर्ण चराचर जगत्की सृष्टि करता है। अतः परमात्मा सम्पूर्ण जगत्का कारण है। पूर्ण जगत् उसकी ही विभूति है। अर्जुनने पूछा था कि इस जगत्में उसकी विभूतियाँ कहाँ है? किस प्रकार वे प्रकट होती हैं। भगवान् श्रीकृष्णने उनका विस्तार सहित वर्णन किया है।

यों तो परमात्मा पूर्ण जगत्में विद्यमान है, परन्तु वह किस प्रकार उस जगत्के भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें प्रकट होता है? भगवान्ने इसका उत्तर भगवद्गीताके दशम अध्यायमें श्लोक संख्या १०-१९ से लेकर १०-४१ तक वर्णन किया है। भगवान्ने इन श्लोकोंमें बताया है।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥

भ० गी० १०-२०

हे अर्जुन परमात्मा सब भूतोंके भीतर स्थित आत्मा है तथा भूतोंका आदि अन्त और मध्य भी वही है। अभिप्राय यह कि परमात्मा सृष्टिको उत्पन्न करनेवाला, सबको धारण करनेवाला और फिर सबका प्रलय करनेवाला है।

इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णने अनेक पदार्थोंकी गणना कराकर उनमें श्रेष्ठताका गुण अपनी विभूतिको ही बताया है। प्रत्येक पदार्थ और प्राणीमें श्रेष्ठ पदार्थ अथवा प्राणी परमात्माकी विभूतिके कारण हैं। यहाँ तक कि जहाँ दैत्योंमें प्रह्लाद परमात्माके कारण हैं वहाँ मुनियोंमें कपिलमुनिको परमात्माकी विभूतिका कारण बताया है।

प्राणियोंमें चेतना परमात्मा है। शस्त्रधारियोंमें राम, पुरोहितोंमें बृहस्पति, सेनापतियोंमें स्कन्द इत्यादि। भाव यह कि सृष्टिमें सब उत्तम गुण परमात्माके ही गुण हैं।

अन्तमें भगवान्‌ने यह कहा है—

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया॥

भ० गी० १०–४०

हे परंतप! परमात्माकी दिव्य विभूतियोंका अन्त नहीं। यह वर्णन तो संक्षेपमें ही है।

प्रकृति जड़ है। आदि रूपमें निश्चल, अन्धकारमय, सोये हुएके समान और अव्यक्त है। इसकी यह अवस्था गुणोंमें साम्यावस्थाके कारण है। यह साम्यावस्था भंग होती है तो गुणोंका खेल आरम्भ हो जाता है। यह खेल अद्भुत और अवर्णनीय है। इस खेलको आरम्भ करने-वाला, अर्थात् साम्यावस्थाको भंग करनेवाला परमात्मा ही है। सांख्यके मतानुसार गुणोंका खेल उनमें आकर्षण, विकर्षण और विषादके कारण हैं। ये गुणोंके लक्षण है। यह खेल आरम्भ होता है और चलता है ब्राह्मदिनके अन्ततक। यह अन्त भी परमात्मा ही करता है। पुनः गुण साम्यावस्थामें ले आये जाते हैं। इस प्रकार जगत्का पूर्ण व्यवहार जगदीश्वर, सर्वात्मा, सर्वेश्वर परमात्माके ही कारण हैं।

जीवात्मा तो वेचारा अज्ञ है। वह अल्प शक्तिका स्वामी है। अतः जब कलेवर तैयार हो जाता है तो वह वायुमें गन्धके समान उसमें आ जाता है और उसमें रहता हुआ भोग करने लगता है।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

भ० गी० १५–१८

शरीरका स्वामी जीवात्मा एक शरीरको त्यागकर दूसरे शरीरमें इस प्रकार आ जाता है जैसे एक मकानसे दूसरे मकानमें वायुके साथ गन्ध आ जाती है।

शरीरमें चेतना परमात्मा है और सब पदार्थोंके श्रेष्ठ गुण परमात्माके कारण ही हैं। यही परमात्माकी विभूतियाँ हैं।

धर्म क्या है ?

श्री वागीश शास्त्री

★

जीवनके आदिकालसे ही, उच्छृङ्खल अननुशासित प्राणीको आवश्यकता है सुयोग्य, सुशिक्षित शासककी। शासनके बिना निम्नतर कुप्रवृत्तियोंकी ओर आकर्षित होना अनिवार्य है। गाय, बैल, शेर, भालू, बन्दर, भैंसे और मदमद्य हाथी आदि खूंख्वार अशिक्षित वन्यपशु भी शासित होकर चातुर्य-पूर्ण कार्य-संपादन करने लगते हैं। अतः यह निर्विवाद है कि विद्यार्थी, सैनिक, प्रजा, भूपति, पशु, यह सब शासककी अनुपस्थितिमें स्वातन्त्र्य संप्राप्त कर, यथेच्छ आचरण करते हुए, कुमार्गगामी हो जाते हैं। अन्ततः भावी गर्त-पतन अवश्यम्भावी है।

विद्यार्थियोंके ऊपर शासन करनेकी प्रणाली अत्यधिक प्राचीन है। 'स्वाध्यायान्न प्रमदितव्यम्' इस वेदोक्त वचनसे स्पष्ट अर्थाभिव्यक्ति होती है कि स्वाध्यायमें असावधानी नहीं करनी चाहिए। जो सर्वशक्तिमान्, सर्वतत्त्वावगन्ता होगा वही त्रुटियुक्त कार्यानुष्ठान नहीं कर सकता। अतः मरणधर्मा, जिसका जीवन ही त्रुटिपूर्ण है, उसके लिए वेदवाक्य सचेत कर रहा है।

प्रमाद न हो एतदर्थ एक शासनकी आवश्यकता अनिवार्य है। स्वाध्यायसे असावधानी करनेका आशय यहाँ क्रम-व्यवधानसे लिया गया है। राजाका विशाल महल बन रहा है। अगणित मजदूर कार्यमें संलग्न हैं। अपने-अपने कार्यमें सब जुटे हुए हैं उनके ऊपर कतिपय निरीक्षक भी हैं जो सबके कार्यके औचित्य-अनौचित्यका निरीक्षण कर रहे हैं। निरीक्षकोंको कार्यविधिका अवलोकन, नरेश गुप्त रीतिसे करता है, तथा नरेशका पथप्रदर्शक एकमात्र धर्म है, जिसके आदेशानुसार, वह मार्ग-च्युत नहीं हो पाता।

शासन और धर्म पर्याय नहीं हैं। किन्हीं-किन्हीं सज्जनोंने इन दोनों शब्दोंके अर्थकी ओर दृष्टिपात कर, विशेष पार्थक्य नहीं बताया। अनुशासित व्यक्ति ही धर्म-परिपालन कर सकता है। सर्वप्रथम शासनकी आवश्यकता है, तदनन्तर धर्मकी। देखिए—

'वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनं शास्ति, सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमद' आदि तैत्तिरीयोपनिषद्के वाक्य हैं। शिष्यको वेदका उपदेश दे, अर्थात् साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ानेके पश्चात्, गुरु द्वारा उपदेश प्राप्त होता है—धर्मविषयक। अध्येता अध्ययन-मध्यवर्ती कालमें, यथेष्ट शासन एवं शिक्षा प्राप्त हो जानेपर ही, धर्म-जिज्ञासाका अधिकारी माना जाता

है। एतदर्थं ही अध्ययनके आदिमें 'सत्य बोलो, धर्मका आचरण करो, स्वाध्यायसे प्रमाद न करो' आदि-आदि वाक्योंका उपदेश नहीं दिया गया।

अबोध बालकके साथ अंग्रेजी अथवा अन्यान्य भाषाओंमें वार्तालाप करना, मूर्खता ही होगी। वह बेचारा, आपको अजीब तथा विचित्र प्राणी मान बैठेगा। आप समझाना चाहते हैं उसे धर्म-तत्त्व, पर वह समझ लेना उसके लिए सर्वथा असम्भव है। वह आपकी अंग्रेजीको तोतेकी टें टें और डाट-डपटको बन्दरकी घुड़कीसे अधिक मान्यता नहीं दे सकता। उसे अपने भावोंसे परिचित करानेके लिए सर्वप्रथम लिपि एवं अंग्रेजी शब्दोंका अभ्यास कराना पड़ेगा। तदनन्तर उसे आपकी वक्तृता महत्त्वपूर्ण प्रतीत होगी।

इसी प्रकार, जबतक सत्य, धर्म, स्वाध्याय आदिका भाव उसे हृदयगम्य न हो जायगा तबतक, वह न तो इन शब्दोंके परिपालनार्थ महत्त्व ही दे सकता है और न आचरण कर सकता है। इन्हीं सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए 'वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनं शास्ति' कहा गया है।

पुरातन अध्ययन-सरणिके ऊपर दृष्टिपात करनेसे भी शासनका महत्त्व विदित होता है। विद्यालिप्सु, सर्व धनधान्यसे सम्पन्न निज गृहको त्यागकर वनस्थित योग्य शासक, षट्कर्म-परायण, धर्म-सेवी गुरुके समीप विनीत भावसे उपस्थित होते थे। 'गुरुपदपंकज सेवा तीसरि भगति अमान' (रा० मा०) परम भगवद्भक्ता शबरीको नवधा भक्तिका उपदेश करते हुए अकारण कृपालु दयालु श्रीराघवेन्द्र तीसरी भक्तिके सम्बन्धमें अमान शब्दका प्रयोग कर रहे हैं। अगली भक्तिमें तो—'चौथी भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान' कपट शब्दका ही प्रयोग किया है। भक्त श्रीप्रभुसे मान करता है, जैसे छोटा बच्चा अपनी माँसे। पर अबोध बालकका हृदय रहता है सर्वथा निष्कपट। अतः अगली भक्तिमें केवल कपट-त्यागके लिए ही कहा गया है। किन्तु तीसरी भक्ति-मानी न होकर गुरु-चरण-पाथोज-सेवा करनी ही कही गयी है। मानित्व वहीं स्थित रहेगा, जहाँ शासकका अभाव होता है। माँके समीप शासनका अभाव रहता है, अतः बालकका उच्छृङ्खल होना स्वाभाविक है। उच्छृङ्खलतासे ऊबकर जब कभी माँ झिड़कती है, तो बालक रूठ जाता है, तो बार-बार बुलानेपर भी न आनेका अभिनय करने लगता है। कोई-कोई बालक सिर पीटने लगते हैं पर ऐसा प्रायः नहीं देखा गया। बालककी आन्तरिक अभिलाषा—माँ मुझे मनावे—यही रहती है। प्रायः देखा गया है—बालक पीटनेपर सीधा घर भागता है, जहाँ पिटता है वहीं नहीं मचलता है। पीटनेवाले प्रतिद्वन्द्वी बालकसे उसे, माँ-जैसी आशा नहीं रहती। अतः कहना पड़ेगा कि मानिताके स्थलमें उच्छृङ्खलताको प्रोत्साहन प्राप्त होता है।

गुरुकी सन्निधिमें शिष्य होना पड़ता है। शिष्यका आशय है शासन करने योग्य। उन्हें योग्यतानुसार आश्रम सम्बन्धी सभी कार्य सौंप दिये जाते हैं। समिधाहरण, गोचारण, गुरुसेवा, भिक्षाटन, भोजन बनाना आदि शिष्योंके ऊपर ही अवलम्बित रहते थे। अन्तेवासी, स्वप्नमें भी प्रमाद नहीं करते थे, और न करते थे आदेश-पालनमें आनाकानी। कार्य-परीक्षणानन्तर, अनुशासन-सम्पन्नता इत्यादि कृत्योंका यथोचितत्व शिष्यमें देखकर योग्यपात्र समझ, पश्चात्

विद्योपदेश किया जाता था, अन्यथा नहीं । क्योंकि कुपात्रमें देनेसे दाता और ग्रहीताका अकल्याण निश्चित है । दान भी निरर्थक चला जाता है ।

यथा—

आमपात्रे यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ।
विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं विनश्यति ॥

—वृहस्पति

कच्चे पात्रमें रखे हुए दूध, दही, घी, शहद आदि नष्ट हो जाते हैं वैसे ही अयोग्यपात्रमें विद्यादान वर्जित है ।

महर्षि आयोदधौम्यका परम रमणीक, लता-वृक्षादिकोंसे वेष्टित आश्रम था । अनेक विद्यार्थियोंसे घिरे हुए महर्षि, विद्याध्यापनमें संलग्न हैं । एकाएक घने बादल हो गये, बिजली कड़कने लगी, और लगी कानके परदे फाड़ने । जहाँ देखो वहीं पानी ही पानी हो गया । सहसा महर्षि कह उठे 'पानीके वेगसे कहीं खेतका बाँध न टूट गया हो ?' इतना सुनते ही एक सुशासित गुरुभक्त बालक आरुणि गुरुदेवके भावको समझकर सीधा खेतपर जा पहुँचा । खेतकी मेड़में एक छोटा-सा छिद्र देख आरुणिने उसे मिट्टीसे बन्द करना प्रारम्भ कर दिया । उससे कोई लाभ न देख उसमें अपनी अँगुली लगा दी । छिद्र बढ़ता गया, इन्होंने हाथ लगा दिया । किन्तु छेदका बढ़ना बन्द नहीं हुआ, और बाँध टूट गया । सब प्रयत्नोंसे हारकर अन्ततः स्वयं आरुणि ही, जल-प्रवाह रोकनेके लिए उस बाँधपर लेट गये । जल ऊपरसे निकलने लगा, पर शासनके महत्त्वको जाननेवाला, परमानुशासित आरुणि टस-से-मस नहीं हुआ ।

यह सुशासनका एक प्रोच्च उदाहरण है । सुशासनसे पात्रता, तथा पात्रमें ही अमूल्य निधिका संस्थापन उचित है । अन्यथा उस निधिका सर्वनाश ही समझना चाहिए—

विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिष्टेऽस्मि रक्ष माम् ।
.... निधिपायाप्रमादिने ॥ मनु०

'विद्याने ब्राह्मणसे आकर कहा विप्र ! मैं तेरी निधि हूँ, अतः मेरी रक्षा कर ।' मेरी रक्षा अधर्मी तथा प्रमादी व्यक्तिको न देकर मेरा मूल्य समझनेवाले सावधान सत्पात्रको देनेमें है ।

पात्रत्वाद्धनमाप्नोति ततो धर्मः ततः सुखम् ।

अतः यह निर्विवाद है कि आनुपूर्व्येण, सुशासन-पात्रतासे धन (विद्या) और तब धर्मकी प्राप्ति होती है । परिणामतः धर्मसे परम सुख निश्चित है । धर्म और शासनमें महान् अन्तर है, वह आप लोगोंको सुचारुतया व्यक्त हो गया होगा । अब धर्मका लक्षण देखिए—

समुद्रके वक्षःस्थलपर एक जहाज दौड़ता जा रहा है । सम्भवतः जहाज-चालक एवं यात्री उद्विग्नप्राय हैं । मीलों तक टापूका नाम नहीं । जहाँ दृष्टि घुमाइये वहाँ जल ही जल दिखायी पड़ता है और सुनाई पड़ता है तरंगोंका हृदय दहलानेवाला घोर गर्जन । मेरे

पासकी भोजन-सामग्री समाप्त हो चली। अतः कुछ व्यक्तियोंको समुद्रमें गिरा देना चाहिए अन्यथा हम लोगोंमें-से एक मनुष्य भी सकुशल निर्दिष्ट स्थानपर नहीं पहुँच सकता'—कप्तानने घरघराते कण्ठसे कहा। अपने प्राणोंका त्याग कर देना किसीको न रुचा। सब दूसरेके मुखकी ओर ताकने लगे, बड़ी विकट समस्या थी, अन्ततः समुद्रमें किन्हें गिराया जाय ?

कई महानुभाव, जिन्हें धर्म नामक शब्दसे ही चिढ़ है—'कर्तव्य'के सिंहासनपर इसे आरूढ़ कर देते हैं। यह सर्वथा भ्रान्ति है। कर्तव्यमें स्वार्थपरता निहित है। अतः धर्मकी पारमार्थिक गतिसे यह होड़ नहीं लगा सकता। इसका आंग्ल रूपान्तर डयूटी शब्द है। इसमें नितान्त संकुचित भावनाएँ भरी हुई हैं। यह अनर्थकी सृष्टि करता है। औदार्य, तथा परहितकी भावनाएँ कोसों दूरसे झाँकती दिखायी देती हैं। इसमें पक्षपात कूट-कूटकर भरा है। यह पाश्चात्त्य कर्तव्यमें अन्तःस्थित भावनाओंका ही निदर्शन है। यहाँ तो हार्दिक भाव ओष्ठोंपर न आ सके। 'ऊपर राम राम, बगलमें छुरी' वाली कहावत अक्षरशः चरितार्थ हो जाती है। जहाँ कपटका साम्राज्य हो, भला वहाँ कर्तव्य तथा शासनकी दाल कहाँ गल सकती है ? जबतक माँ-बाप कार्य करते हैं माँ बाप हैं, तभी तक उनका कर्तव्य है उन्हें घरमें रखना, अन्यथा, बाहर निकालने तककी नौबत आ जाती है।

यदि वस्तुतः कर्तव्यका अर्थ ही धर्म है, तो कोई साहसी भी अपने प्राणोत्सर्गसे कर्तव्य पूर्ण कर सकते थे। पर नहीं, उसके महत्त्वसे सर्वथा वंचित रहनेवालोंके यह सौभाग्य कहाँ ? उनके मतमें—कर्तव्य नाम—प्रत्यादानका है। इस हाथसे काम, उस हाथसे दाम। अस्तु कप्तानको सबके नामकी चिट्ठियाँ बनाकर डालनी पड़ीं; धर्मकी शरणमें आना पड़ा। धर्मकी अदालतमें पक्षपात दूरसे चौंकता है। उसे यही एक आश्रय था। सात चिट्ठियाँ निकाली गयीं। जिन यात्रियोंके नाम निकले, उनकी अनिच्छा रहते हुए भी वे हठात् समुद्रमें फेंक दिये गये।

कर्तव्यका आशय 'करने योग्य' है। माता-पिताकी आज्ञा परिपालन करना पुत्रका कर्तव्य है। गुरुचरणवन्दना करना तथा सेवा करना शिष्यका कर्तव्य है, इत्यादि नियमोंका दिग्दर्शक एकमात्र धर्म है। एतदर्थ कर्तव्य जिसके साथ सम्बन्धित कर दिया जायगा, वह उसीके अर्थकी परिपुष्टि करेगा। डाकू कहेगा—हमारा कर्तव्य डाका डालना है। इसी प्रकार अनेकानेक उदाहरण संघटित हो सकते हैं। कहनेका आशय कर्तव्य शब्द दूसरे अर्थोंपर अवलम्बित है। जिस प्रकार गायकी पूँछ उसे नहीं छोड़ती, जहाँ-जहाँ गाय जायेगी, पूँछ भी वहीं जायेगी, उसी प्रकार, कर्तव्य शब्द भी अन्य शब्दोंके पीछे सम्बन्धित होनेके कारण उसीके अर्थका परिपोषक हो जायेगा।

वट-सावित्री

'श्रीशङ्खपाणि'

★

महान् निर्जन कानन। सहस्र-सहस्र स्कन्धों और शाखाओंसे विलसित घनच्छाय विशाल वटवृक्ष। मूलके समीप बैठी एक कृशकाय, तपस्विनी, तरुणी, मानों पूर्णिमाकी चन्द्रकला उतर आयी हो। उसकी सहज कान्तिसे आस-पासका स्थान प्रकाशमान था। तरुणीके आगे एक परम सुन्दर किन्तु निष्प्राण-सा तरुण भूमिपर ऊर्ध्वमुख पड़ा था। तरुणी राजर्षि अश्वपतिकी राजकन्या तथा महाराज द्युमत्सेनकी पुत्रवधू सावित्री थी। उसके सामने उसीके पति सत्यवान्का निष्पन्द शरीर दृष्टिगोचर हो रहा था। सावित्रीने सत्यवान्का पतिके रूपमें स्वेच्छासे वरण किया था। पीछे देवर्षि नारदके यह बतानेपर भी कि 'सत्यवान् अल्पायु है; आजसे एक वर्ष पूर्ण होते ही उसकी जीवनलीला समाप्त हो जायगी।' सावित्री अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुई। उसने कहा—'नारी एक ही बार किसीको अपने हृदयमें स्थान देती है। एकको छोड़कर दूसरेका वरण करना असदाचार है; अतः मैंने जिस महापुरुषका वरण कर लिया है, वही मेरा पति होगा, दूसरा नहीं।'

सावित्रीने पतिके गृहमें पधारते ही एक वर्षतक चलनेवाला निराहार व्रत आरम्भ किया। उस व्रतका उद्देश्य था पतिके जीवनकी रक्षा—उन्हें दीर्घायु बनाना। उसने कठोर संयम-नियमका पालन करते हुए अपना व्रत पूर्ण कर लिया। आज ही उस व्रतका अन्तिम दिवस था। जिस पतिको वह चिरजीवी बनाना चाहती थी, वह उसके आगे मूर्च्छित पड़ा था। तथापि वह तेजस्विनी नारी निराश नहीं हुई, उसे देवर्षिके बताये हुए व्रतपर श्रद्धा थी और उसके अमोघ फलपर अटल विश्वास। उसके श्वसुर वनवासी थे; अतः वह उस घोर वनमें पतिकी सार-सँभालके साथ ही कठोर तपस्या करती थी। इसके लिए उसने सास-श्वसुर एवं गुरुजनोंकी आज्ञा तथा शुभाशिष प्राप्त कर ली थी। वह व्रतपरायणा बाला बड़े धैर्यसे देख रही थी कि अब आगे क्या होता है? उसके पतिका मस्तक उसकी गोदमें था और धड़ जमीन पर।

इसी समय उसे दो डरावनी विकराल मूर्तियाँ दिखायी पड़ीं। वे यमदूत थे। उन दूतोंको सावित्रीके पास आनेका साहस नहीं हुआ। उसका दिव्य तेज उन्हें दाहक प्रतीत होता था। वे सहसा अदृश्य हो गये। थोड़ी ही देरमें एक तेजस्वी देवता प्रकट हुए। सावित्रीने पतिका सिर धीरेसे धरतीपर रख दिया और स्वयं उठकर उन्हें विनीतभावसे अभिवादन किया। वह बोली—

'आप कोई देवता जान पड़ते हैं; क्योंकि ऐसा रूप मानव-लोकमें कहीं नहीं देखा जाता है। देवेश्वर ! आप कौन हैं और क्या करना चाहते हैं ? कृपापूर्वक बतावें ।'

'शुभे ! मैं यमराज हूँ। तुम पतिव्रता हो, इसीलिए मैं तुमसे बात कर रहा हूँ। तुम्हारे पतिकी आयु समाप्त हो गयी, अतः मैं उन्हें लेनेको आया हूँ ।'

'मैंने तो सुना है, कि आपके दूत मनुष्योंको लेनेके लिए आया करते हैं; फिर आप स्वयं कैसे चले आये ?'

'यह धर्मात्मा है, इसे मेरे दूत नहीं ले जा सकते । अतः मैं स्वयं आया हूँ ।'

इतना कहकर यमराजने एक पाशबद्ध पुरुषको सत्यवान्‌के शरीरसे खींच लिया । उसका पूरा शरीर हाथके अंगूठेके बराबर था। उसके निकलते ही सत्यवान्‌का स्थूल शरीर सौन्दर्य-हीन—निस्तेज दिखायी देने लगा। यमराज उस जीवको लेकर दक्षिण दिशाकी ओर चले। सावित्री भी उनके पीछे-पीछे चल दी। नियम-व्रतके प्रभावसे वह सिद्ध हो चुकी थी। सर्वत्र अप्रतिहत गतिसे जा सकती थी ।

'अब तुम लौटो और पतिका और्ध्वदैहिक संस्कार करो। तुम्हें पतिका जहाँ तक अनुगमन करना चाहिए, वहाँ तक तुम कर चुकीं ।'

सावित्री—'प्रभो ! जहाँ पति, वहाँ पत्नी। पतिका अनुगमन पत्नीका सनातन धर्म है। आपकी कृपासे पतिके साथ मैं कहीं भी अबाधगतिसे जा सकती हूँ। सात पद बोलने या सात पग साथ चलनेसे मैत्री हो जाती है, उसी मैत्रीके आधारपर मैं आपसे कुछ कहूँगी। सुनिये ! आप धर्मराज हैं, आपसे सत्संगका लाभ तो लेना ही चाहिए। ऐसा अवसर कब मिलेगा ? सत्पुरुषोंने धर्मको प्रधान माना है; अतः मेरे विचारसे सबको धर्मके पथपर ही चलना चाहिए ।'

यम—'मैं तुम्हारी इस बातसे बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम लौटो और सत्यवान्‌के जीवनको छोड़कर जो चाहो वर माँग लो ।'

'मेरे श्वसुरकी दृष्टि-शक्ति लुप्त हो गयी है, वह उन्हें मिल जाय, तथा वे बलवान् एवं तेजस्वी हों ।'

'एवमस्तु, अब लौट जाओ। तुम इस दुर्गम पथपर चलनेसे थकी-सी दीखती हो ।'

'देवेश्वर ! पतिके साथ चलनेमें थकावट कैसी ? जहाँ पति, वहाँ गति। आप इन्हें जहाँ भी ले जायँगे, वहीं मैं चलूँगी। आपके साथ चलनेसे सत्संगका पुण्य भी तो प्राप्त हो रहा है ! सत्पुरुषोंका संग एक बार भी जीवनमें मिल जाय तो यह बहुत बड़ी वस्तु है। सत्संग कभी निष्फल नहीं जाता; अतः सदा सत्पुरुषोंके समीप ही निवास करना चाहिए ।'

'तुमने अत्यन्त हितकारक बात कही है, यह मेरे मनको बहुत ही प्रिय लगी है; अतः तुम सत्यवान्‌का जीवन छोड़कर दूसरा कोई भी वर पुनः मुझसे माँगो ।'

'मेरे श्वसुरके राज्यका अपहरण हो गया है, वह उन्हें शीघ्र प्राप्त हो तथा वे कभी धर्मसे विचलित न हों ।'

तथास्तु, अब लौट जाओ, जिससे तुम्हें श्रम न हो ।'

'आप प्रजाको संयममें रखते हैं, इसलिए आपका नाम यम है। मेरी एक बात और सुनिये—अद्रोह, अनुग्रह और दान सत्पुरुषोंका सनातन धर्म है। साधारण लोग तो मित्रोंपर ही दया करते हैं, केवल सत्पुरुष ही ऐसे हैं, जो अमित्रोंपर भी दया ही दिखाते हैं।'

'जैसे प्यासेको पानी मिल जाय, उसी तरह तुम्हारी बातोंसे मेरे अन्तःकरणकी प्यास बुझ गयी है। अतः अब तुम कोई तीसरा अभीष्ट वर माँग लो, किन्तु सत्यवान्‌का जीवन न मागना।'

'मेरे पुत्रहीन पिताको सौ संततिवर्धक पुत्र प्राप्त हों यही मेरा तीसरा वर है।'

'अच्छा यह भी ले लो और लौट जाओ। तुम बहुत दूर चली आयीं।'

'पतिके समीप हूँ, अतः मेरे लिए यह मार्ग दूर नहीं है। कृपया चलते-चलते ही मेरी एक बात और सुन लें। आप विवस्वान् (सूर्य)के पुत्र हैं, अतः वैवस्वत कहलाते हैं। आपके प्रभावसे लोग धर्माचरण करते हैं; इसीसे आपको धर्मराज कहा जाता है। मनुष्य अपने ऊपर भी उतना विश्वास नहीं करता है, जितना वह सन्तोंपर करता है; यही कारण है कि सब लोग सत्पुरुषोंसे विशेष प्रेम करते हैं प्रेम या सौहार्दसे विश्वास पैदा होता है; अत. सबका सन्तोंपर अधिक विश्वास होता है।'

'शुभे ! तुम्हारे मुखसे जो बात निकल रही है, उसे मैंने तुम्हारे सिवा और किसीसे नहीं सुना है। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम सत्यवान्‌का जीवन छोड़कर कोई भी चौथा वर माँग लो।'

'मेरे और सत्यवान् दोनोंके सम्पर्कसे मुझे बलवीर्य-शाली, हृदयाह्लादक सौ पुत्र प्राप्त हों।'

'राजकुमारी ! तुम्हारी यह कामना भी अवश्य पूर्ण होगी। अब लौटो, बहुत दूर चली आयीं।'

'धर्मराज ! सन्तोंका कृपाप्रसाद अमोघ होता है, अतः वास्तवमें वे ही जगत्‌के रक्षक हैं।'

'पतिव्रते ! तुम ज्यों-ज्यों धर्मकी बात सुना रही हो, त्यों-त्यों तुम्हारे ऊपर मेरी श्रद्धा बढ़ती जा रही है; अतः कोई और भी अप्रतिम वर माँग लो।'

'भगवन् ! अब अन्तमें मैं यही माँगती हूँ कि सत्यवान् जीवित हो जाँय; क्योंकि मैं पतिके बिना जीवन-धारण नहीं कर सकती। इस वरदानसे आपकी ही बात सत्य होगी; क्योंकि आप मुझे सत्यवान्‌से सौ पुत्र प्राप्त होनेका वचन दे चुके हैं।'

यमराज सन्न रह गये। एक सतीने उन्हें पराजित कर दिया। उन्होंने सत्यवान्‌को बन्धनमुक्त कर दिया। सावित्री पतिको साथ लेकर लौटी और उनके शरीरको पूर्ववत् अङ्कमें लेकर बैठ गयी। सत्यवान्‌के शरीरमें चेतना लौट आयी। यमराजके दिये हुए सभी वरदान सफल हुए। सती सावित्री 'कालके भी मुखसे निकाल लायी पति को।'

तभीसे वट-सावित्रीका व्रत लोकमें प्रचलित हुआ। स्त्रियाँ पतिके दीर्घ-जीवनकी कामनासे इस व्रतका श्रद्धा-उत्साहसे पालन करती हैं।

भक्ति रसरूप है

श्री व्योहार राजेन्द्रसिंह

मनुष्यके जीवनमें तीन प्रवृत्तियाँ स्वाभाविकरूपसे रहती हैं प्रेम, कर्म और ज्ञान। कोई प्राणी ऐसा न होगा जिसमें तीनों न हों। उन तीनोंके विभाग अलग-अलग करने पड़ते हैं। कर्म दो प्रकारके होते हैं—

१—विक्रिया रूप कर्म—जैसे बालोंका कालेसे सफेद होना, मनुष्यकी तीन अवस्थाएँ हैं-बाल युवा और वृद्धावस्था। इनके लिए कर्ताकी आवश्यकता नहीं होती। ये क्रियाएँ ईश्वर या प्रकृतिके सान्निध्यसे होती हैं। किन्तु ये क्रियाएँ जीवितावस्थामें होती हैं मृतावस्थामें नहीं। घाव होनेके बाद उसका भर जाना भी इसी प्रकारकी क्रिया है जो स्वाभाविकरूपसे होतो है। इनमें कर्ताकी अपेक्षा नहीं होती है।

दूसरे प्रकारके कर्म वे हैं जो हम जान-बूझकर करते हैं। जो कर्म अनजानमें होते हैं उनसे पाप-पुण्यकी उत्पत्ति नहीं होती। जो कर्तृत्वपूर्वक किये जाते हैं उन्हींसे पाप-पुण्य उत्पन्न होते हैं। पहले प्रकारके कर्मोंको हम प्राकृत कर्म और दूसरे प्रकारके कर्मोंको जैव कर्म कह सकते हैं। अर्थात् जीव द्वारा किये जानेवाले कर्म हैं। जीव अपनेको सुख और परायेको दुःख देनेके लिए अकसर कर्म करते हैं। गीतामें अपनेको पीड़ा देनेवाले कर्मों और दूसरोंका विच्छेद करनेवाले कर्मोंको तामस कर्म कहा है—

मूढग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्॥

(श्रीमद्० १७।१९)

कर्तृत्वपूर्वक किये जानेवाले कर्मोंमें भी चित्तकी मलिनतासे होनेवाले कर्मोंको पुण्य या पवित्र कर्म कहते हैं। जिस प्रकार बाह्य शुद्धिके लिए श्रम आवश्यक है, उसी प्रकार हृदय-शुद्धिके धर्म आवश्यक है। श्रम कभी-कभी धर्म हो जाता है। जैसे खेती करना श्रम-कार्य है किन्तु वही यदि सर्वहितके लिए किया जाय तो धर्म हो जाता है। इसलिए ब्राह्मणके लिए भी कृषि कर्म करना विहित बताया है। 'कृषिकर्म च कारयेत्'। कृषिके समान मिलके भी दो उद्देश्य

हो सकते हैं—अपने लाभके लिए और देशके लाभके लिए। अपने लाभके लिए श्रम और देशके लाभके लिए किया गया कर्म धर्म हो जायगा। अन्तर्यामीकी आराधना करनेकी भावना धर्म होगी और स्वर्गके लिए की गयी आराधना स्वार्थ होगी। यदि वह सर्वजनहिताय और ईश्वर-प्रीत्यर्थ होगी तो सच्ची उपासना होगी।

सभी कर्मोंमें चैतन्य आवश्यक है। देहातिरिक्त आत्माको शुद्ध करनेके लिए जो कर्म किये जायँगे वे सात्त्विक और पवित्र होंगे। कर्मकर्ता तो जीव ही होगा। हृदयमें जो प्रेम है वह चैतन्यका स्वरूप है। जैसे चुंबक और लौहका आकर्षण और कुमुदिनी तथा चन्द्रका आकर्षण जड़ प्रकृतिमें प्रेमकी अभिव्यक्तिके उदाहरण हैं। स्त्री और पुरुषमें जो आकर्षण है वह जड़ प्रकृतिका आकर्षण नहीं, क्योंकि उनमें जीवात्मा है। प्रियता एकांगी नहीं होनी चाहिए, पूर्णतामें ही सामरस्य आता है। केवल इन्द्रिय-तृप्तिके लिए किये गये कर्म प्रेमकी कोटिमें नहीं आते। बिना निष्ठाके धर्मकी उत्पत्ति नहीं होती। सांसारिक प्रेमोंमें जो प्रियताकी भावना होती है वह यदि ईश्वरके प्रति लग जाय तो भक्तिका रूप धारण कर लेगी। प्रियता चाहे विराट्के प्रति हो, हिरण्य-गर्भके प्रति हो अथवा ईश्वर या ब्रह्मके प्रति हो, प्रियताका विषय यदि पूर्णको बनाया जायगा तभी प्रेम पूर्ण होगा। वैसे प्रियता स्वाभाविक प्रवृत्ति है। प्रीति न तो आहार्य है और न अध्याहार्य (न वह उधार ली जा सकती है और न चुरायी जा सकती है)। प्रियताका बीज अपने स्वरूपमें ही विद्यमान है।

धर्म द्वारा आत्माकी सत्ता, प्रियता द्वारा उसकी आनन्दरूपता और चैतन्य द्वारा उसकी चित्-स्वरूपता स्वयं सिद्ध है। आत्मरति योगियोंका और भगवद्रति भक्तोंका लक्ष्य है। बादरायण कहते हैं—

'शब्दोत्पत्तिभ्यामात्मारामा भगवत्परा च।' यह भी कहा गया है कि भक्ति ईश्वरको वशमें कर लेती है। भागवतमें कहा गया है—**'वशीकरोति मां भक्तिः सत्-स्त्रियः सत्पतिं यथा।'** इसमें पति और पत्नी दोनोंके साथ सत्-विशेषणका प्रयोग किया गया है। भक्ति अनन्य या अव्यभिचरित होनी चाहिए, जैसा कि गीतामें कहा है:—

'मां च योऽव्यभिचारेणः भक्तियोगेन सेवते।' (१४.२६) भक्तिमें यदि सामर्थ्य हो तो ईश्वर अवश्य आ सकता है। वैसे भगवान् निरंकुश और परम स्वतन्त्र हैं किन्तु भक्ति उन्हें भी वशमें कर लेती है।

दर्शनोंमें इस विषयपर बहुत विचार किया गया है। सांख्यशास्त्रकी दृष्टिसे भक्ति अन्तःकरणकी सात्त्विक वृत्ति है। स्नेहाकाराकारित वृत्ति ही भक्ति है। शास्त्रकी दृष्टिसे क्लिष्ट चित्त-वृत्तियोंका विरोध कर अक्लिष्ट वृत्तियोंको स्वरूपमें स्थिर करना ही भक्ति है। सांख्यशास्त्रमें विविक्त आत्मज्ञान होनेसे वृत्तियाँ सात्त्विक हो जाती हैं। इसके अनुसार यदि आत्मा अपने स्वरूपमें स्थित हो जाय तो फिर ईश्वर उसके वशमें कैसे होगा वह तो स्वयं ईश्वर हो जायगा। वेदान्तकी दृष्टिसे अद्वैतवादी कहते हैं कि अद्वैत परमात्मामें अनुग्राहक भावकी उत्पत्ति नहीं हो

सकती। उसमें भजनीयत्व तथा भजनकर्तृत्व दोनों ही मायाके अन्तर्गत हैं। उसमें परमात्माके वश होनेका प्रश्न ही नहीं उठता।

भक्ति-शास्त्रकी यह महिमा है कि उसीके द्वारा परमात्मा वशमें हो सकता है। भक्ति-सूत्रमें कहा है :—भक्तिरेवैनं वशयति गमयति दर्शयति।' भक्तिकी महिमा यही है कि भगवान् उसके अधीन हो जाते हैं। वैसे सर्वशक्तिमान् भगवान् मायावृत्तिके अधीन नहीं हो सकते। किन्तु भक्तिमें यह शक्ति है कि गोपियाँ भी उसका प्रसाद प्राप्त कर सकती हैं। भागवत में कहा है :—'प्रसादं लेभिरे गोपी...' भगवान् ज्ञानी तपस्वियोंके वशमें नहीं, किन्तु भक्ति-मानोंके वशमें हैं। वैसे वे सुखाय नहीं दुःखाय हैं। किन्तु वे सुखाय हैं—सुखसे प्राप्त हो जाते हैं, इसलिए यह तो निश्चय है कि भक्ति मायावृत्ति नहीं हो सकती।

इसपर भक्तोंने कहा है कि भक्तिको यदि सात्त्विक वृत्ति मानें तो उसका भी विरोध हो सकता है। वह भी घटती-बढ़ती रह सकती है। यदि भक्तिको माया मानें तो वह असत्य ठहरती है। इसलिए भक्ति न तो सात्त्विक वृत्ति है और न माया ही है। भगवान् स्वयं अपने मुखसे कहते हैं कि मुझे ब्रह्मा या ब्रह्माके पुत्र भी भक्तके समान प्रिय नहीं। शंकर या संकर्षण भी मुझे इतने प्रिय नहीं जितने, कि तुम हो :—

'न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः।' (भा. ११.१४.१५)

कुछ लोगोंने कहा भक्ति भगवान् ही की शक्ति है। इसीलिए भगवान् स्वयं उसके वशमें हो जाते हैं। रसिकोंने कहा यह मत भी हमें मान्य नहीं। शक्ति तो शक्तिमान् ही के अधीन होती है! अतः भक्ति भगवान्‌की शक्ति नहीं किन्तु स्वयं भगवान्‌का स्वरूप ही है।

यह विश्व सदात्मक है; क्योंकि उसकी एक सत्ता है। भक्त या प्रेमी चिदात्मक हैं क्योंकि उनमें चित या चेतना है और भगवान् आनन्दात्मक हैं क्योंकि वे आनन्दमय हैं। आनन्दप्रधान होनेसे ही जब वे प्रतिबिम्बित होते हैं तो वही भक्ति हो जाती है।

ऊपर कहा गया है कि भक्ति स्वयं भगवान्‌का स्वरूप है। किन्तु अपने स्वरूपके वशमें हो जाना उनकी कोई महिमा नहीं हुई। इस प्रकार भक्ति न कोई वृत्ति है, न शक्ति है, न माया है और न भगवान्‌का स्वरूप है। अतः भक्तोंने कहा है कि भक्ति आनन्दका सारसर्वस्व है।' ह्लादिनीसारसर्वस्वम्'। इसी ह्लादिनी शक्तिको भगवान्‌ने भक्तिमें ढाल दिया है। वह भगवत्-स्वरूपगत परमानन्दघन है। अपने आनन्दको भगवान्‌ने भक्तिके हृदयमें ढाल दिया है। इसीलिए वह उन्हें वशमें कर लेती है। भगवान्‌ने कहा है—

'भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥'

रस्य या रसिकभावका उपपादन बिना आनन्दके नहीं होता।

अब प्रश्न है कि भक्तिमें ऐसी कौन-सी शक्ति है। भगवान्‌को भक्तिका ऋणी होना पड़ता है। रामायणमें रामचन्द्रजीने हनुमान्‌जीसे कहा कि मैं तुम्हारे एक-एक उपकारके

बदलेमें अपने समग्र प्राणोंको देता हूँ तब भी शेष उपकारोंके लिए मैं तुम्हारा ऋणी रह जाऊँगा तुलसीदासजीने भी कहा है :—

देबे को न कछू रिनियां हौं
धनिक तु पत्र लिखाऊ (वि. प. १००)

इसका अर्थ यह हुआ कि ईश्वरकी अपेक्षा ईश्वरको ऋण देनेवाला बड़ा है। भागवतमें कहा है :—

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।

गोपी वह है जो भगवान्‌का गोपन करती है, बालकके समान रक्षा करती है। जो सबकी रक्षा करते हैं उनकी रक्षा गोपी करती है। त्रिलोकीकी रक्षा व्रजवासी करते हैं। कंसने व्रजमें गुप्तचर भेजे और जानना चाहा कि यहाँ सबसे बलवान् और शीलवान् व्यक्ति कौन है ? क्योंकि उसीके हाथसे मेरी मृत्यु होनी है। गोपियोंने कहा कि कृष्ण तो ऐसा नहीं है। आज ही वह मेरे घर चोरी कर गया है, कल मेरे चीर चुरा ले गया था। यह है ईश्वरत्वका गोपन। व्रज कृष्णके ईश्वरत्वका गोपन करता है। व्रजमें कोई कृष्णको दण्डवत् नहीं करता। व्रजवासियोंकी भावना है कि वे हमारे बालक हैं। प्रणाम करनेसे उसकी आयु क्षीण होती है। फिर बालकसे क्या माँगें ? वहाँ तो भगवान् गोपोंके सजातीय हैं, उनके प्रेमाधार हैं। वे वहाँ अप्रमेय नहीं बल्कि मुष्टिमेय हैं, व्रजवासियोंकी मुट्ठीमें आ जाते हैं। गोपाङ्गना आभीर जातिकी हैं। उन्होंने ईश्वरको इन्द्रियातीत नहीं समझा बल्कि उसे इन्द्रियोंका विषय बना लिया। उसकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है कि जो इन्द्रियोंसे कृष्णरसका पान करें वही गोपी है—

'गोभिः इन्द्रियैः पिबन्ति कृष्णरसम्।'

किसीका विषय होगा ज्ञान तो किसीका विषय होगा रस। ज्ञानमें कुछ परोक्षता है किन्तु रसमें प्रत्यक्षता होनी चाहिए। सुख परोक्ष नहीं अपरोक्ष होता है। रसके विषयमें नाटचशास्त्रके आचार्य भरत मुनिने कहा है कि नाटकमें सामाजिक (दर्शक) नटोंमें प्रत्यक्ष रसोंका अनुभव करते हैं। जो नट शकुन्तला या दुष्यन्तका कार्य करते हैं उन्हें नट या नटी न समझकर प्रत्यक्ष दुष्यन्त या शकुन्तला ही समझते हैं। वहाँ रस मूर्तरूपसे प्रत्यक्ष हो जाता है। जो प्रत्यक्ष अनुभव न किया जा सके वह रस नहीं। यहाँ तो श्रीकृष्ण सारे रसकी मूर्ति ही हैं, उन्हें 'निखिल-रसामृतमूर्ति' ही कहा गया है। गोप-गण ज्ञान-ध्यानसे नहीं किन्तु प्रेमसे उन्हें प्राप्त करते हैं। ज्ञान-ध्यानसे निर्विशेष तत्त्व या जगत्कर्ताकी उपासना होती है। किन्तु रसका साधारणीकरण होकर प्रत्यक्ष आस्वादन होता है। न्यायशास्त्रमें, जो अनुमानप्रमाण माना गया है, इसका अर्थ यह है कि अनुमान भी प्रत्यक्ष झलक है। वह भक्तिमें सफल होता है।

असलमें भक्तके वशमें हो जाना ही भगवान्‌की भगवत्ता है। भक्तोंको देनेके लिए भगवान्‌के पास कुछ भी नहीं है। भागवतमें ब्रह्मा कहते हैं कि श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ हाथ जोड़कर खड़े हैं। गोपियोंके सामने ऋणीके समान नम्रभावसे स्थित हैं। भीष्मने स्तुति करते हुए कहा है :—

'स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिव हन्तुमिभो गतोत्तरीयः॥'

साधारणतामें लौकिक रसकी अनुभूति नहीं होती तो आत्मिक रसकी कैसे होगी ! श्रीकृष्णको जो पीताम्बरधर कहा गया है उसके अनेकों अर्थ होते हैं साधारण अर्थ तो है पीताम्बरधारी किन्तु दूसरा अर्थ है कि जो राधाके वस्त्रोंको धारण करें। पीताम्बरं राधायाः अम्बरं दधाति इति पीताम्बरधरः।

भागवतमें आया है :—

'न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माऽभजन्दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥'
(भा० १०-३२-२२)

भक्तिको सात्त्विक वृत्ति, माया या शक्ति माननेमें ईश्वरका अंवद्य संयोग है। उसमें सजातीय नहीं है, किन्तु उसे रस माननेमें उसके साथ पूर्ण ऐक्य है। कहीं कोई खण्ड या भेद नहीं है। कृष्णमें पृथक्त्व है ही नहीं। वह भक्ति भगवान्से भी अधिक शक्तिशाली है।

(श्रीस्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वतीके प्रवचनके आधार पर)

वन्दना

प्राण सुख केतन
सचेतन साधनाओंमें
परम प्रियतम हमारे
सलिल वयके दो किनारे
ज्ञान कारण सत्य नारायण
परम श्रीधाम माधव
राधिका वल्लभ सनातन राम अनुपम
साँसका क्रम साधनामें
स्वयं निज आराधनामें
प्राण चिन्मय सृष्टिकी वय मुक्तिकी अभिनन्दना है
राधिका की वन्दना है

डॉ० शिवकुमार

श्रीमद्भगवद्गीता—आजकी कसौटीपर

★

कुछ लोगोंको ऐसा मिथ्याभास होता है कि 'कृष्णने अर्जुनको सांसारिक बातोंसे हटाकर आत्मा और परलोकके झमेलेमें डाल दिया। हिन्दू-समाजमें प्रचलित सभी कुरीतियों और हानिकर प्रथाओंका समर्थन गीतामें मिलता है और कृष्णने अर्जुनकी इस बातका उत्तर नहीं दिया है कि युद्धमें पुरुषोंके मारे जानेपर उनकी पत्नियोंका भ्रष्ट होना और वर्णसंकर बच्चे पैदा होना अनिवार्य है।'

ऐसे लोगोंको स्वयं भगवान् कृष्णने गीताके १८वें अध्यायमें उत्तर दे दिया है—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥ (१८।६७)

मेरा यह उपदेश (गीताका रहस्य) किसी भी दशामें न तो तप-रहित मनुष्यको बताना, न भक्ति-रहितको, न सुननेकी इच्छा न करनेवालेको और न मेरी निन्दा करनेवालोंको बताना। क्योंकि ऐसे लोगोंको उसका रहस्य समझमें नहीं आ सकता है। संभवतः यही कारण है कि आधुनिक आलोचक वहाँतक नहीं पहुच पाये और इसलिए उन्हें दोष देना भी हम दोष समझते हैं।

कतिपय समीक्षकोंका कथन है कि 'अर्जुनको वंश समाप्त होने, कुल-धर्म नष्ट होने, नारियोंके दूषित होने, वर्ण-संकर उत्पन्न होने और फिर उनसे कुल-धर्म और जाति नष्ट होनेका भय था। उसीका समाधान वे कृष्णसे कराना चाहते थे। कृष्णको केवल इतना ही कहकर रुक जाना चाहिए था कि—हे अर्जुन! इस युद्ध-स्थलमें यह अज्ञान कहाँसे आ गया जो बुरे मनुष्योंकी आदत है, स्वर्ग-प्राप्तिमें बाधक है और कीर्ति नष्ट करनेवाला है। तुम नपुंसकता छोड़ो। यह तुम्हें अच्छी नहीं लगती। हृदयकी तुच्छ दुर्बलताको छोड़कर उठ बैठो आदि।' 'अर्जुनकी आवश्यकताको देखते हुए शेष सारी गीता व्यर्थ है।'

किन्तु अर्जुनकी आवश्यकता केवल इतनी ही नहीं थी, अर्जुन स्वयं अत्यन्त बुद्धिमान्, चतुर, विद्वान् और दार्शनिक था। उसे साधारण रूपसे डाँटकर या फुसलाकर नहीं समझाया

जा सकता था। वह पूर्णरूपसे अर्थात् लौकिक और पारमार्थिक या आध्यात्मिक सभी दृष्टियोंसे सन्तुष्ट हो जाना चाहता था। कृष्णके समान योगेश्वरके प्राप्त होनेपर और उनके ज्ञान-सागरका लाभ प्राप्त होनेपर अर्जुन ही नहीं कोई भी विवेकशील पुरुष उस अवसरसे लाभ उठाकर ज्ञान-गंगामें निमज्जित होनेका आनन्द प्राप्त करनेके लोभका संवरण नहीं कर सकता था। वह यह भी जान लेना चाहता था कि यह बिना अस्त्र-शस्त्रका मेरा सारथि किस प्रकार इस युद्धमें मेरी और अपनी रक्षा कर सकेगा। इसीलिए उसने कृष्णका तबतक पिण्ड नहीं छोड़ा जबतक उन्होंने अपना विराट्‌रूप दिखाकर अपनी योगशक्तिका विश्वास नहीं दिला दिया।

उपदेश तीन प्रकारके होते हैं—गुरु-सम्मित उपदेश, सुहृत्-सम्मित उपदेश और कान्ता-सम्मित उपदेश। कृष्ण तो अर्जुनके सखा थे इसलिए स्वभावतः जब मित्र कोई उपदेश देता है तो उसके साथ तर्क-वितर्क करना अनिवार्य होता है। इस बात को स्वयं अर्जुनने कहा भी है कि—

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥ (११.४१)

[मैंने आपको मित्र मानकर और आपकी महिमा न जानकर ही प्रमाद और स्नेहके कारण यादव आदि जो शब्द कहे हैं] अर्जुन वास्तवमें जानता ही नहीं था कृष्णकी शक्तिको, वास्तवमें अर्जुनको तीन मानसिक विक्षोभ उत्पन्न हो गये थे—एक मोह या अज्ञान, दूसरे स्मृति-भ्रंश और तीसरे सन्देह। इन तीनोंको दूर करनेके लिए कृष्णको ज्ञानका उपदेश देना पड़ा, उसकी स्मृति शुद्ध करनी पड़ी और अपना विराट् रूप दिखलाकर उसके सन्देहका निवारण करना पड़ा। इसीलिए गीता सुननेके पश्चात् अन्तमें अर्जुनने कहा—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया है, मुझे स्मृति प्राप्त हो गयी है और मेरा सन्देह भी दूर हो गया है और अब मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

जब मनुष्यको यह अभिमान हो जाता है कि मैं बहुत कुछ जानता हूँ, तब यही उसके अज्ञानका प्रारम्भ है और जब वह समझता है कि मैं कुछ नहीं जानता हूँ, तभी उसके ज्ञानका स्फुरण होता है। अतः अर्जुनने धर्मके लोप आदिकी बातचीत की, इसीलिए कृष्णने डाँटते हुए कहा कि 'यह तेरा व्यवहार अनार्योंके समान है, अस्वर्ग्य है और अकीर्तिकर है तू इस नपुंसकताको छोड़कर उठ खड़ा हो।' तब अर्जुनने ही स्वयं दूसरी बात छेड़ दी कि 'मैं गुरुओंको मारकर राज्य नहीं चाहता, मैं भीख माँगना अच्छा समझता हूँ।' तब कृष्णने उससे कहा कि 'जिनका शोक नहीं करना चाहिए उनका तू शोक करता है और पण्डितोंके समान बातें करता है।' उसके पश्चात् पहला उपदेश उन्होंने यही दिया कि 'इस समय तेरा धर्म युद्ध करना है। कोई किसीके मारनेसे नहीं मरता है

क्योंकि आत्मा अजर अमर है।' इसी प्रसंगमें उन्होंने कर्मयोग और स्थितप्रज्ञताका उपदेश दिया। सांख्ययोगका महत्त्व बतलाया, कामना, अहंता और ममताके त्यागसे परम शान्तिकी प्राप्तिका उपाय बताया।

अर्जुन इतनी शीघ्रतासे माननेवाला व्यक्ति नहीं था। वह प्रश्न-पर-प्रश्न करता गया, युद्ध करनेसे पूर्व वह भौतिक और आध्यात्मिक सभी दृष्टियोंसे अपने कर्तव्यकी शुद्धि कर लेना चाहता था। उसने स्वयं कृष्णसे समाधिस्थ स्थितप्रज्ञकी परिभाषा पूछी। जब कृष्णने ज्ञानका महत्त्व बतलाया तब अर्जुनने स्वयं पूछा—

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥ (३.१)
व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥ (३.२)

[हे जनार्दन ! यदि आप कर्मकी अपेक्षा ज्ञानको श्रेष्ठ मानते हैं तो मुझे क्यों कर्ममें प्रवृत्त करते हैं ? आपकी इन मिली हुई बातोंसे मुझे भ्रम होता है इसलिए आप स्पष्ट निश्चित बात कहिए।] इस पर भगवान्‌ने कर्मका उपदेश दिया। इस प्रकार एकके पश्चात् एक प्रश्न अर्जुन करता गया और कृष्ण उसे समझाते गये और अन्तमें सब प्रकारसे सन्तुष्ट होनेपर ही अर्जुनने कहा—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत।
स्थितोऽस्मि ... ...

'हे कृष्ण ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया, स्मृति प्राप्त हुई और सन्देह दूर हो गया। अब आप जैसा कहेंगे वैसा ही मैं करूँगा।'

जब महाभारतका युद्ध समाप्त हुआ तब कृष्णने अर्जुनसे कहा कि 'शीघ्र रथसे कूद पड़ो।' अर्जुनने कहा 'भगवन् ! पहले आप उतरिये।' इसपर कृष्णने आदेश दिया—'मैं कहता हूँ, कूद पड़ो।' अर्जुन झट कूद पड़ा और उसके पश्चात् ज्यों ही कृष्ण रथसे कूदे त्यों ही वह रथ घोड़ों-सहित क्षण भरमें जलकर भस्म हो गया। अर्जुन यह दृश्य देखकर स्तम्भित रह गया। उसकी समझमें नहीं आया कि यह हो क्या गया। इसपर कृष्णने कहा 'अर्जुन ! जिस रथपर भीष्म और द्रोण जैसे महारथियोंने दिव्यास्त्र चलाये हों, वह क्या अबतक बचा रह सकता था। यह तो मेरे योगबलसे खड़ा था।' इसलिए गीताके अन्तमें संजयने धृतराष्ट्रसे कहा है—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

'जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हों और धनुर्धर अर्जुन हों वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है, यही मेरा मत है।'

महाभारत हो चुकनेके बहुत दिनोंके पश्चात् एक बार अर्जुनने निश्चिन्त बैठे हुए कृष्णसे कहा कि 'भगवन् ! वह जो आपने युद्ध-क्षेत्रमें मुझे उपदेश दिया था, फिरसे सुनाइए'। इसपर

श्रीकृष्णने कहा 'मैं कोई तैयार करके भाषण नहीं लाया था। वह तो अवसरके अनुरूप योगयुक्त होकर मैंने तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दिया था। मुझे तो अब स्मरण भी नहीं है कि मैंने क्या कहा था।' अतः यह कहना नितान्त भ्रामक है कि गीताके कुल आठ श्लोक ही कामके हैं और शेष सब व्यर्थ हैं। वास्तवमें उन आठ श्लोकोंमें दी हुई प्रेरणाको क्रियान्वित करानेके लिए ही कृष्णको अर्जुनका मोह दूर करनेके लिए, उसकी स्मृतिको प्रबुद्ध करनेके लिए और उसका सन्देह दूर करनेके लिए गीताका उपदेश करना पड़ा।'

जहाँ तक श्राद्ध, तर्पण, पुनर्जन्म और वर्णाश्रम-व्यवस्थाकी बात है, यह किसी आलोचकके मतसे हानिकर हो सकता है, किन्तु अधिक विचारवान् पुरुषोंकी दृष्टिसे इन्हीं सुरीतियों और विश्वासोंके कारण भारतीय संस्कृति अभी तक जीवित है और इनमें-से कुछ विषय (जैसे पुनर्जन्म) ऐसे हैं जिनके अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण मिल चुके हैं। रही श्राद्ध-तर्पणकी बात, उसके कर्मकाण्डमें भेद माना जा सकता है, किन्तु पुण्य-तिथियों और जयन्तियोंके रूपमें वह समाज भी श्राद्ध और तर्पण कर रहा है जो श्राद्ध-तर्पणके रूढ़ कर्मकाण्डमें विश्वास नहीं करता। यही जादू है जो सिरपर चढ़कर बोल रहा है।

अर्जुनके प्रश्नों और कृष्णके समाधानोंकी मीमांसा एक लेखके कलेवरमें किसी भी प्रकार समा नहीं सकती। फिर भी संक्षेपमें अनेक प्रश्नोंका समाधान करनेका प्रयत्न किया गया है। लोगोंको अपने मनसे यह भ्रम दूर कर देना चाहिए कि सब लोग बन्द आँखोंसे गीता पढ़ते हैं। जिन्होंने खुली आँखोंसे गीता पढ़ी है वे न इसे 'भानुमतीका पिटारा समझते हैं न गोरखधन्धा', वरन् ऐसा राजमार्ग समझते हैं जो किसी पथभ्रष्टको भी ठीक मार्गपर ले चलते हुए उसे जीवनके सब तत्त्वोंका प्रत्यक्ष दर्शन करा देता है, मनको शान्ति प्रदान करता है और सब प्रकारके अज्ञानका हरण कर लेता है।

●

प्रार्थना

फरियाद सुनो दिलकी प्रभो कृष्ण मुरारे
ठुकराया हुआ जगका तेरे आया हूँ द्वारे।
दुनियाँको मेरे दर्दका जब हाल सुनाया
हालत पे मेरी हँसके मुझे और रुलाया।
दिल टूट गया चैन नहीं साँझ सकारे॥
आते ही मुसीबत तुझे दुखियों ने पुकारा
अपनी दयासे तूने दिया उनको सहारा
मेरी डूबती नैयाको करो पार किनारे॥

वसंतराव तुलजापुरकर

●

मानस-मन्दिरमें युगलकिशोरकी झाँकी

ध्यान-मञ्जरी

मनि मोतिनकी द्वार द्वार प्रति झालरि झूलै।
जगर मगर दुति देखि देखि मनके मन भूलै॥
राजत बन्दनवार चारु तुलसी कुसुमावलि।
बैठत लपटत उड़त झुकत गुञ्जत भृङ्गावलि॥
मन्दिर मध्य अनूप रूप रचना मन मोहैं।
कल दरपनके कुण्ड अछत दरपनके सोहैं॥
चारौ चित्र विचित्र चित्र श्रेनी बर दरसैं।
बिछी सुकोमल दिव्य लाल मखमलकी फरसैं॥
मधि अभूत अभविष्य दिव्य इक रत्न सिंहासन।
कोटिक दिनकर निकर प्रभासम प्रभा प्रकाशन॥
ताके मधि देदीप्त लिप्त सोभा मन मोहै।
पद्मराग मनि जलज मञ्जु षोडस दल सोहै॥
ता मधि जुगलकिशोर गौर स्यामल छवि छाजे।
अद्भुत प्रभा प्रकाश धाम लावन्य विराजे॥
मूरति प्रेम सिङ्गार चारु आसन विलसत कल।
किधौं मयंक पतंग सङ्ग उदये उदयाचल॥
घन दामिनि तन धरे काम रति धौं सुखदायन।
किधौं लसत इन्दिरा सङ्ग श्रीमन्नारायण॥
चपला चम्पा कनक निछावर गौर वरनकी।
थकित जकित अति होति जोति वरनत गति मनकी॥
नगन जरे छवि भरे विविधि भूषन तन चमकैं।
जगमग जगमग जोति अङ्ग दामिनि सी दमकैं॥

मेचक बेनी विनी पीठ ऊपर परिआयो।
मनु मतवारो नाग केलि दल पर अरसायो॥
रत्न चन्द्रिका चूड़ चारु चिकुरन विच सरसै।
किधौं नील नग सिखर दिव्य दीपक दुति दरसै॥
अद्भुत उज्जल मञ्जु माँग मोती छबि छायी।
जनु कालिंदी मध्य गङ्ग धारा धसि आयी॥
मुख मण्डल सुअनूप रूप उपमा सब हारैं।
कोटि मुकुर अरविन्द इन्दु सुखमा सुख वारैं॥
गजमुक्ता सब गुथे केस मेचक मैं चमकैं।
मनो निवि उत्तम मध्य जोति उड़ मण्डल दमकैं॥
बन्दी कनक जराव भाल मण्डन मध्यम लसि।
जनु ससि घनके बीच दामिनी लता रही धसि॥
सुभग सोहावन भाल लाल वेना मनि भ्राजै।
मनु विधु मण्डल मध्य मित्र मण्डल धसि राजै॥
ता तल बेंदी लाल स्याम विंदो सङ्ग सोहै।
जनु कुज सनि आसीन चन्द्र मण्डल मधि मोहै॥
लसैं सचिक्कन चपल श्याम तिरछी द्वौ भौंहै।
किधौं सरद विधु बीच नाग छवना द्वै सोहै॥
प्रफुलित नैन विशाल हास्य चितवन छबि छाजैं।
दुहूँ नुकीले इचे रेख अञ्जन मधि भ्राजैं॥
चखे चषन छबि श्याम रङ्ग पलकन लपटानै।
लखत लखत धौं स्याम भृङ्ग क्रिमि लौं सरसानै॥
खञ्जन सारस कृष्णसार उपमा सब भूले।
मनो सरद विधु बीच द्वन्द इन्दीवर फूले॥

•

पुरातन

श्रीगोविन्द शास्त्री

★

सतीश बाबूको बूढ़ा कौन कह सकता है। रिटायर होकर वे घरपर ही रहते हैं। अच्छी पेन्शन मिल जाती है। अपने ही कमाये पैसेसे उन्होंने एक बड़ा सारा बंगला बनवा लिया है। उस बंगलेमें चार हिस्से पहलेसे ही करा लिये थे। अब उनके चार पुत्र एक ही मकानके भिन्न-भिन्न कमरोंमें रहते हैं। सतीश बाबू नीचे रहते हैं। चारों लड़के अच्छी कमाई कर लेते हैं। उनके घरमें ही बैरिस्टर, इञ्जिनीयर, डाक्टर और पाइलॉट हैं। वे सबको समान रूपसे प्यार करते हैं और डाटते हैं मगर उनकी फटकार भी सुहाती है। दिनों छाये बादल जिस तरह कड़ककर धूपकी नन्हीं-नहीं किरणोंके लिए रास्ता कर देते हैं वैसी ही उनकी फटकार होती है। पति-पत्नी ३-३ महीने एक-एक लड़केके यहाँ खाते हैं। किसी भी घरमें कोई भी चीज बने सतीश बाबू पहले। बहुएँ नये जमानेकी हैं पर उनकी श्वसुरके सामने हिम्मत नहीं पड़ती। जिस दिन नाराज होते हैं तो बहुएँ सासको ही आगे कर देती हैं। सासने तो उनके उफान को, क्रोध और प्यारको जवानीकी बाढमें सहा है इसलिए वह उनके हर चरमको जानती हैं। रातमें खाना खा पीकर बहुएँ सासके पास आ बैठती हैं और इस घरकी अतीत संस्कृतिको सुन-सुन कर विस्मित होती रहती हैं। सासके पास नया सुनानेको कुछ भी नहीं रहता फिर भी वे अपने जवान पतियोंकी तुतलाती भाषाका स्पष्ट इतिहास सुननेमें आनन्द अनुभव करती हैं कभी-कभी उसके पुत्र भी इस श्रोता-मण्डलीमें आ बैठते हैं। सतीश बाबूका वह कठोर व्यवहार और गुस्सा सुनकर बहुएँ आश्चर्य और भयसे सिहर उठती हैं तो सासको उस अविजित तटका-सा गौरव अनुभव होता है जिसपर सागरका ज्वार पछाड़ खाकर लौट गया है।

सतीश बाबूके यहाँ नियम है कि कोई भी जूते पहनकर घरके अन्दर नहीं आ सकता। सबके जूते एक नियत जगह पर ही खुलते हैं और वह जगह सतीश बाबूको अपने कमरेमें-से दिखती रहती है। शायद घरमें कौन आया है—कौन गया है—ऐसी सारी सूचना वे इन जूतोंके माध्यमसे ही जान लेते हैं। उनके पुत्र दशरथके चार पुत्रोंकी तरह ही आपसमें स्नेह करते हैं, पिताके आज्ञाकारी हैं फिर भी सतीश बाबूने अपने सामने ही सबको अलग-अलग कर दिया है। कमी किस बातकी ! सतीश बाबूको महसूस होता है मानो ये चारों उनके चार शीशोंमें झलकते प्रतिबिम्ब हैं ये सब मिलकर ही उनका समग्र व्यक्तित्व सम्हालते हैं। पड़ोसी

कहते हैं—अरे भैय्या ! तुमने तो आमके वृक्ष लगाये हैं और इसी उम्रमें उनके फल खा रहे हो। किसी जन्ममें पुण्य किया था तुमने। हमारे देखो तीन वर्षसे लगातार फेल हो रहा है। सोचता था—जैसे-तैसे ग्रेजुएट हो जाय तो किसीसे कह सुनकर नौकरी लगवा दूँ। अपनी दाल रोटीका जुगाड़ तो बैठा लेगा पर क्या बताऊँ ? लगता है कहीं क्लर्की ही करता फिरेगा। तुम देखो जमाना किस तरह बदल रहा है शिक्षाका कोई मूल्य नहीं।

यह सुनकर सतीश बाबू कहते—अरे भाई ! यह सब तो (आप लोगोंकी) भगवान्‌की दुआ है, बन्दा क्या कर सकता है और चुप रह जाते। उन्हें कहने वालोंको आँखोंमें झाँकती ईर्ष्या या प्रशंसासे कोई सरोकार नहीं रहता। वे प्रयत्नवादी रहे हैं। निष्फल प्रयत्नोंको भाग्यके माथे मढनेके बजाय दृढ़तर पुरुषार्थमें ही उनका विश्वास रहा है। भगवान्‌का अस्तित्व केवल इसलिए स्वीकारते हैं कि वे जिस समाजमें रहते हैं वहाँ आस्तिकता एक फैशन है, भगवान् एक विश्राम है किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि वे उस आस्थाओंके जंजालको चुनौती देकर जी नहीं सकते थे बल्कि इस फैशनको अपनाकर वे अपने मित्रोंपर अनकहा एहसान ही करते रहते थे। इस व्यर्थके वितण्डामें फँसकर अपनी बातचीतको नीरस करना किसी भी स्थितिमें उनको पसन्द नहीं था। करनेको उनके पास सामयिक चर्चाएँ ही बहुत थीं इसलिए आजतक कभी भी ऐसे प्रसंग उनके लिए आलोचना या तर्कके विषय नहीं बन सके थे।

जबसे सतीश बाबूका बड़ा बेटा विधिशास्त्रियोंके शिष्ट-मण्डलमें विलायत गया है, उनका मन नहीं लगता। रहनेको उनके पास शेष तीन पुत्र हैं किन्तु उन्होंने आजतक कभी विकल्पमें नहीं सोचा। किसी आदमीकी चार अंगुलियोंमें-से कोई एकके न रहनेपर जैसे अंजुलिमेंसे कुछ रिसता रहता है वैसा ही उनके मनमें भी कुछ रिसता रहता। जहाँ ये बैठते वहाँसे घरवालीकी जूतियोंपर निगाह जाते ही उन्हें फिर कुछ खटकने लगता। मन तो उन्होंने किया भी था—'इतना कमा लेता है, इतना नाम है फिर विलायत जाकर ही कौन-से चाँद लगा आयेगा।' पर बैरिस्टरने जो आग्रह, उत्सुकता और व्यग्रता दिखायी थी उसके सामने उनको झुकना ही पड़ा। आजकी यह मौन रिक्तता उनको खाये जा रही है। घरवाले सब अपने-अपने कामोंमें व्यस्त हैं। बैरिस्टरका पत्र पाकर वे सब कई तरहके प्रश्न करते और खुश होते हैं कि उनका भाई विलायत रिटर्न होकर आयेगा। सतीश बाबूको घरकी इस खुशीपर बड़ा आक्रोश उपजता है। आजके इस युवावर्गकी पाश्चात्य-भक्ति पर तरस आता है। किसीके गुणोंको अपनानेसे उन्हें कोई द्वेष नहीं पर जब कोई अपना अस्तित्व भुलाकर दूसरेको ही श्रेष्ठतर मानने लगता है तो उसका गौरव किसी अन्यका अनुयायी मात्र रह जाता है, ऐसी स्थितिमें व्यक्ति, अपने आपके सहारे नयी दिशाका निर्माण नहीं करता बल्कि उसे तो किसीके बनाये मार्गपर चलनेकी आदत हो जाती है। इन विचारों पर उनके भीतर ही कोई प्रतिक्रिया स्वर उठता है कहता है—ये तर्क तुमने अपनी विवशताके नामपर आत्म सन्तोषके लिए गढ़े हैं। मोहको छोड़ो। विलायतको जब गौरवका प्रतीक मान ही लिया तो तुम भी मान लो। झलक ही उठता है। घरवाले समझते हैं—अवस्थाके कारण वे कुछ अधिक चिड़चिड़े हो गये

हैं। ऐसी ही एक सुवह जब वे दाढ़ी बना रहे थे तो उनकी पत्नीने आकर कहा कि किसी आमके पेड़को पड़ोसके बच्चोंने तोड़ डाला है।

सतीश बावूके हाथका उस्तरा रुक गया। मनमें उठती आशंकाने क्रोधका रूप ले लिया। आग्नेय नेत्रोंसे पत्नीकी तरफ देखते हुए बोले—घरमें यह इतनी पलटन पड़ी है, क्या इससे लानके पेड़ोंकी देखमाल भी नहीं होती। इन पेड़ोंके पीछे ही तो मेरा जीवन कट रहा है। पास-पड़ोसके बच्चे आ जाँय और तुम लोगोंकी आँख भी नहीं खुले।

पत्नीने कहा—तुम्हें पलटन बुरी क्यों लगती हैं ? बड़े भाग्यसे ऐसे लड़के मिलते हैं। बहुएँ वेचारी अपने काममें लगी रहें या तुम्हारे इन पौधोंकी रखवाली करें पड़ोसियों को कहना तो तुम्हें आता नहीं सारा दोष घरवालोंपर लगा देते हो।

सतीश बावू बिंध-से गये इस उत्तरसे। पत्नीने उनके प्यारको कचोटा है, उसने विश्वासको परखा है—तुम चाहती हो, पड़ोसियोंसे झगड़ूँ। हम ही अगर सावधान नहीं रहेंगे तो दूसरोंको किस तरह सावधान कर सकते हैं। अपनी गल्ती मान लेनेके बजाय झूठी सफाई दे रही हो।

पत्नीने तुनककर कहा—तुम्हारी तो अक्ल ही बिगड़ती जा रही है तुम्हें तो ये लड़के ही बुरे लगते हैं।

सतीश बावूका क्रोध एकबारगी ही उमड़ पड़ा उन्होंने खुला उस्तरा पत्नीकी तरफ फेंक दिया।

पत्नी अपने आपको बचाये तबतक तो उस्तरेकी चोटसे आँखोंमें-से खूनकी धार बह चली। सतीश बावू हतप्रभ-से बैठे रह गये। सारी बहुएँ एकत्र हो गयीं, बेटे अपना काम छोड़कर आगये। पड़ोसियोंको बहुत दिनोंमें आज मौका मिला था। बिना ही निमन्त्रणके दल-बल सहित आ गये। कुछ ही समयमें सारे मुहल्लेमें हल्ला हो गया—सतीश बावूने अपनी पत्नीकी आँख फोड़ दी। औरतोंने खुस-फुसाना शुरू कर दिया। कोई कहती—बूढ़ेका दिमाग खराब है। किसीके स्वरमें अतिशय सहानुभूतिका स्वर था—औरत तो वेचारी गऊ थी। पता नहीं किस हितैषीने पुलिस-स्टेशनपर जाकर खबर दी। पुलिस इन्स्पेक्टरको घरमें घुसते देख-कर सतीश बावूका पछतावा काफूर हो गया। जितनी भी भीड़ थी उसपर गरज पड़े। सबको निकाल बाहर कर दिया। पुलिस-इन्स्पेक्टरने पूछा—क्यों साहब! क्या बात है ?

सतीश बावूका रहा-सहा संयम भी जाता रहा— आपसे मतलब ? मेरे घरमें बिना जरूरत आप घुस कैसे आये ? बड़े आये हैं बात पूछनेवाले। मैं कहता हूँ आप जिस तरह आये हैं चले जाइये। आपको दखल देनेकी कोई जरूरत नहीं है।

पुलिस इन्स्पेक्टरने फिर भी खिसियाते हुए कहा—फिर यह सब माजरा क्या है ? यह भीड़-मड़क्का क्यों है ? आपकी पत्नी लहू-लुहान कैसे हो रही हैं ?

आपको इससे मतलब ? जाइये आप। कोई जरूरत नहीं है आपकी।

पुलिस इन्स्पेक्टर अपने ही आपमें कुढ़ता हुआ फुफकारकर वाहर निकला कि पासके फ्लैटमें-से एक अत्यन्त आत्मीयता-भरा विनीत स्निग्ध स्वर सुनायी पड़ा—आइये ! आइये, इन्स्पेक्टर साहव !

इन्स्पेक्टरको उस निमन्त्रणमें पता नहीं कौन-सा अवाच्य आकर्षण प्रतीत हुआ कि वह उस फ्लैटमें चला ही गया। घण्टे भर बाद विजयीकी मुस्कुराहट लेकर निकला।

सतीश वावूने जव उसे जाते देखा और पड़ोसीको विनयावनत होते देखा तो जल भुन उठे। वे भूल गये कि अभी उनकी पत्नीकी आँखसे खून गिर रहा है। पड़ोसीने बिना पूछे ही जब यह कहा—सतीश वावू ! इन्स्पेक्टर साहब मिलनेवाले ही हैं। तुम वेकार उनपर क्यों नाराज हुए। अपने ही आदमी हैं। कह-सुन देते पर तुमने उन्हें नाराज करके अच्छा नहीं किया। अरे भाई साहव ! वक्तका हाकिम है यों विगाड़ना चाहिए।

सतीश वावूने घृणासे मुँह फिरा लिया।

कोर्टमें केस चला दिया पुलिसने। सरकारी पक्षके गवाहके रूपमें वही पड़ोसी महोदय थे। उनका बैरिस्टर वेटा भी १०-१५ दिनमें आने ही वाला था। पत्नी ठीक तो हो चली भी किन्तु आँख नहीं बच सकी। आज पत्नीके बयान होनेको थे। पुलिसके हस्तक्षेप करनेके वाद सतीश बावूने पत्नीकी तरफ देखना तक वन्द कर दिया था। आज कोर्टके अहातेमें घुसते ही पड़ोसी महाशय दिख गये। कातर वाणीमें वोले—क्या करें सतीश बावू ! पड़ोसमें रहनेका फायदा उठा रहे हैं। पुलिसने खामखाहमें घसीट लिया। अपनेको बयान-वयान देना तो आता नहीं। भगवान् जाने क्या कहना चाहते थे और क्या कह गये।

प्रतिक्रिया-विहीन सतीश वावूका चेहरा उस ओरसे घूम गया। आज वे कहीं एकान्तमें बैठना चाहते थे—ऐसे एकान्तमें जहाँ पड़ोसी, पुत्र, पत्नी और परिचितकी कल्पना तक नहीं है। जिस जगह आनेसे वे आजतक कतराते रहे वहाँ आज पत्नीके कारण आना पड़ा। पत्नी अपने आपमें सहमी-सहमी कोर्टके कटघरेमें खड़ी हुई। आँखपर पट्टी वँध रही थी। सतीश वावूने मुँह फिरा लिया पर पता नहीं वह कौन-सी अज्ञात शक्ति थी जिसने उनको उठने नहीं दिया। मजिस्ट्रेटने पूछा—

सतीश बावूकी पत्नी ही हो न ?

—हाँ

—क्या सतीश बावू अक्सर तुमको मार वैठते हैं ?

—छोटे लोग अगर गलती करते हैं तो उसे सुधारनेका जिम्मा वड़ोंका है।

—जिस दिन तुम्हारे चोट लगी उस दिन क्या सतीश बावूने उस्तरा खोलकर तुम्हारे पर वार किया ?

—वार नहीं किया, फेंक दिया था। उस्तरेके खुले रहने या जुड़े रहनेका मुझे पता नहीं। मेरी गलती थी कि मैं अपनेको बचा नहीं सकी।

—क्या तुम यह नहीं मानती कि तुम्हारे पतिने तुमपर हमला करके तुम्हे चोट पहुँचायी ?

—उनका इरादा ऐसा नहीं था। कौन पति अपनी पत्नीको यों चोट पहुँचाना चाहेगा ? यह सब तो होना था सो हो गया। गलती न उनकी है न किसी और की।

—मगर किसीको घातक चोट पहुँचाना तो एक जुर्म है।

दर्शकोंकी बेंचोंपर बैठी हुई मिस शीला यह सुनकर अपनेको नहीं रोक सकी। साथ बैठी स्त्रीसे बोली देशमें जबतक यह दकियानूसी खयाल है तबतक स्त्री-जातिको उसका गौरव नहीं मिल सकता ? ये जन्मसे ही दासताके भाव लेकर आती हैं। इनमें समानताका भाव पनप ही नहीं सकता। आजकी बीसवीं शतीमें भी ये सोलहवीं शतीमें जी रही हैं। इतना बड़ा अन्याय सहकर भी ये कुछ शिक्षा नहीं देना चाहतीं।

यह सुनकर उसे पास बैठी महिलासे उत्तर मिला—बहन ! नारी एक सत्य है। युगोंसे यात्रा करके भी वह सत्य बदल नहीं सकता। गंगाका पानी हजारों मील बहकर भी द्रव रूप रहता है, पावन रहता है। नारीमें समायी नैसर्गिक दया, कोमलता और उत्सर्गकी भावना क्या युगोंके बदलनेसे बदल जायगी। यह नारी तो भारतकी संस्कृति है। जिस समानताका स्वप्न तुम देख रही हो वह हमारे लिये पराया है। हमारे देशने नारीको सिरपर रखनेकी पगड़ी समझा है। समानतासे अधिक ही पाया है। इस कोरी समानताने नारीको शो करनेमें रख दिया है। आज नारीका मूल्य लगा दिया गया है पहले अमूल्य थी। पूज्य नारीको आज भोग्य ही मान रखा है।

मिस शीलाको बड़ा क्रोध आया उस अपरिचित महिलाके कथनपर। कोर्टका समय समाप्त हो जानेपर सभी अपने-अपने रास्ते चल दिये। सतीश बाबू अपना अलग ही रिक्सा लेकर गये तो उनकी पत्नी और उनकी बहन अपनी मोटरमें। सतीश बाबूकी पत्नीको अपनी बहुओंपर क्रोध आ रहा था क्योंकि उनके रहनेसे वह अपने पतिके पास जाकर क्षमा-याचना नहीं कर सकती थी। सतीश बाबू इस कदर कठोर हो जायेंगे, इसका विश्वास भी उसको नहीं था। आज अगर उसका बैरिस्टर बेटा होता तो क्या कोर्टमें जानेको नौबत आती ? आँखकी पट्टी अब उसे चुभने लगी थी। मनमें सोच हो रहा था—आखिर इस केसका फैसला क्या होगा ? उसने तो कोई रिपोर्ट नहीं लिखायी थी। पुलिस खुद ही आकर उसके बयान ले गयी थी। कहीं सतीश बाबूको···सोचकर ही उसका शरीर भय और चिन्तासे काँपने लगा। सतीश बाबू दिनभर अपना कमरा बन्द किये पड़े रहते। खाना बिना बोले कोई रख जाता किन्तु उनको जैसे भूख थी ही नहीं। पुत्रोंने कई बार पूछनेकी कोशिश की किन्तु उनको झिड़की ही मिली। मजिस्ट्रेटके मूडको देखकर सबको यह लग रहा था कि फैसला सतीश बाबूके खिलाफ ही होगा। पड़ोसी सामने तो कुछ नहीं कहते थे किन्तु उनके घरोंसे उठती आवाजोंका लहजा जरूर यह संकेत करता रहता था कि सुरेश बाबूको ही सुखी रहनेका कोई अधिकार नहीं है। भले ही पड़ोसियोंको सुख न मिले किन्तु सुरेश बाबूको दुःखकी आगमें डालकर वे उन्हें भी अपने हो जैसा बना चुके थे। पुत्रोंके लाख मनानेपर भी सतीश बाबूने कोई वकील नहीं किया था और आज भी वे अपनी गलती माननेके लिए तैयार नहीं थे। इस घरको उन्होंने अपने रक्तसे बनाया है, इसपर उनका अधिकार है। कानून उनके बनाये

संसारमें दीवार खड़ी नहीं कर सकता। वे चाहें तो अपने घरकी एक-एक ईंट उखाड़कर फेंक सकते हैं क्योंकि इसे उन्होंने बनाया है। ठीक ऐसे ही उन्होंने अपनी पत्नीको सजा-संवारकर रखा है। उसे सजा देनेका, उसके कल्याणका पूरा दायित्व है उन पर।

जिस दिन फैसला होना था उसी दिन उनका बैरिस्टर बेटा आ रहा था। पता नहीं क्यों अनजाने ही उनके मनको सन्तोष आ गया था। फैसलेके दिन सारे घरवाले, सगे-सम्बन्धी, पास-पड़ोसके आदमी कोर्टमें एकत्रित थे। मजिस्ट्रेटने अपना फैसला सुनाते हुए कहा—यद्यपि कानूनकी निगाहमें सतीश बाबूने अपनी पत्नीको चोट पहुँचायी है किन्तु उनकी पत्नीके बयानसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऐसी चोट पहुँचानेका उनका कोई इरादा नहीं था। यह तो एक वाकया था जो अनचाहे ही घट गया ऐसी हालतमें पुलिसने उनको खामख्वाह परेशान किया। अतः उन्हे ससम्मान बरी किया जाता है।

फैसला सुनकर घरवालोंको सन्तोष हुआ वर्ना परिवारकी प्रतिष्ठा जाती रहती। सतीश बाबू अब भी अविचलित अपनी सीटपर बैठे रहे। पुत्रोंने उनको लाकर गाड़ीमें बिठाया। उनकी पत्नीके मनमें इतने दिनोंका पश्चात्ताप सीमा तोड़कर बह निकला। वह अपने पुत्रों और पुत्र-बधुओंकी परवाह किये बिना सतीश बाबूके कदमोंमें लोट गयी और बोली—

देवता! अब तो क्षमा कर दें, वर्ना मुझे कहीं जगह नहीं मिलेगी।

●

एक बार किसीने अबू मुर्ताजसे पूछा कि 'किस उपायसे प्रभु-कृपा प्राप्त हो?

मुर्ताज बोले—'प्रभु-प्रेममें जो अन्तरायरूप यह संसार है और बाह्य जीवन है, इनपरसे आसक्ति निकाल डालनेसे प्रभुकृपा प्राप्त हो सकती है।'

●

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी लीला भूमि होनेसे
व्रज समस्त जनताके आकर्षणका केन्द्र

व्रज विश्वका सांस्कृतिक प्रकाशस्तम्भ

श्रीमोहनलाल शर्मा

★

वर्षके किसी भी मासमें सम्पूर्ण व्रजमण्डलमें प्रेमी दर्शनार्थियोंकी भीड़ दिखायी पड़ती है किन्तु श्रावण मासमें तो व्रज वन-उपवन, यमुना पुलिन तथा पर्वतोंका प्राकृतिक सौन्दर्य भक्तोंके प्रति अत्याकर्षक ही बन जाता है। उस समय मथुरा, वृन्दावन, नन्दगाँव, बरसाना आदि सभी स्थानोंपर झूला-उत्सवोंकी धूम मच जाती है। चारों ओर भारतके हर कोनेसे आया हुआ यात्री-समुदाय ही दिखलायी पड़ता है। मथुरा-वृन्दावनके छः मील लम्बे मार्गपर यात्रियोंका रात-दिन ताँता सा बन जाता है। शासन-अधिकारियोंको यातायातका विशेष प्रबन्ध करना पड़ता है।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके समय भी बाहरसे आनेवाले यात्रियोंकी भीड़ रहती है। वास्तवमें व्रजमण्डलके गाँव-गाँव और घर-घरमें व्रजनन्दनका जन्मदिवस अपने आत्मीय जनकी भाँति परम उत्साह एवं हर्षोल्लाससे मनाया जाता है। इस समय पावन व्रजकी छटा देखते ही बनती है। श्रीकृष्ण-जन्मस्थान मथुरापर तो यह समारोह इतने सुन्दर ढंगसे मनाया जाता है कि दर्शक-गण भावविभोर होकर ऐसा अनुभव करने लगते हैं कि आज भी गोपाल हमारे बीच उपस्थित हैं और नन्दजीके द्वार गोप-गोपिकाएँ आनन्द-बँधावा लिये चले आ रहे हैं।

बाहरसे आनेवाले यात्रियोंमें धनी-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित, गृहस्थी-संन्यासी, विद्वान्, योगी, उच्चकोटिके कलाकार, साहित्यकार, बाल, युवा, वृद्ध, स्वस्थ, अपंग, स्त्री तथा पुरुष देशी तथा विदेशी होते हैं। इन आगन्तुकोंकी वेशभूषा तथा भाषासे उनके प्रदेशका ज्ञान सरलतासे हो जाता है और एक ही स्थानपर भारतकी विभिन्न संस्कृतियोंका संगम-सा दिखलायी पड़ता है।

निःस्सन्देह बाहरसे आनेवाले भक्तोंको यात्रा-सम्बन्धी कठिनाइयाँ तथा असुविधाएँ भी होती हैं किन्तु यहाँ आनेपर न जाने उन्हें कौन-सी शान्ति प्राप्ति हो जाती है कि सभी प्रसन्न तथा प्रफुल्लचित्त दिखलायी पड़ते हैं। अवश्य ही उनके लिए व्रजमें कोई ऐसा आकर्षण

है कि जिसके कारण भारतवर्ष ही नहीं विदेशोंसे भी भावुक यात्री यहाँ आते ही रहते हैं। यहाँ आकर उन्हें आध्यात्मिक ज्ञानप्राप्ति तथा शान्ति प्राप्त होती है।

हम आज इसी विषयपर थोड़ी गम्भीरतासे विचार करेंगे कि क्या मानवको व्रजदेशमें आकर कोई अलौकिक शान्ति प्राप्त होती है और वह शान्ति किस कालसे किस प्रकार मिलती रही है।

प्राचीन कालसे ही 'तीन लोकसे मथुरा न्यारी' लोकोक्ति प्रसिद्ध है। वास्तवमें यह ठीक ही है; क्योंकि जव हम यहाँके पुराने स्थानोंके दर्शन करते हैं तो हमें सतयुग, त्रेता तथा द्वापरसे सम्बन्धित संस्कृति एवं सभ्यताके चिह्न आज भी इस पावन नगरीमें उपलब्ध होते हैं यमुना तटपर स्थित सप्तऋषि टीला, बलि टीला, नारदटीला, ध्रुव टीला, अम्बरीष टीला, दुर्वासा-आश्रम, कंस-किला आदि ऐसे स्थान हैं जो कि इस पुण्यभूमिके अतीतके गौरवके साक्षी हैं। वैदिक सभ्यताके आदिमें अवतरित सप्तऋषिकी यही तपोभूमि रही थी। राजा बलिके अश्वमेध यज्ञ यहीं पर सम्पादित हुए थे। नारदजीकी साधना यहीं पराकाष्ठावस्थाको पहुँची थी। नारदजीके आदेशानुसार बालभक्त ध्रुवको यहीं के मधुवनमें भगवान्‌ने दर्शन देकर कृतार्थ किया था। दुर्वासा, अम्बरीषके कथाकी यही नाट्यभूमि थी। कंस-हनन इसी नगरीमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी द्वारा हुआ था और यहीं परमब्रह्मने प्रकट होकर इसी नगरीको अपनी जन्मभूमि बनाकर सम्मानके सर्वोच्च शिखरपर विराजमान किया था। इस नगरका भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे सम्बन्ध बतलाया जाता है। उन्होंने अपने अनुज शत्रुघ्नजीको यहाँका शासक नियुक्त किया था। अस्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि कमसे कम अपने भारतवर्ष भरमें इतना पुराना धार्मिक तीर्थ-स्थान दूसरा नहीं है। सदैव ही यहाँसे धार्मिक प्रेरणाएँ प्राणि मात्रको मिलती रही हैं।

भगवान् कृष्ण-बलदेवके युगमें व्रजमण्डलकी ख्याति और भी अधिक बढ़ी क्योंकि इन दोनों भ्राताओंने इतनी आदर्श लीलाएँ इस भूमिपर कीं कि सारा भारत आज भी व्रजरजके कण-कणको नमस्कार करता है।

क्रूर कंस द्वारा जब उग्रसेनजीको बन्दी बना दिया गया, देवकी तथा वसुदेवजीको भी जब कारागारमें ठूँस दिया गया और उनके निर्दोष बच्चोंकी हत्या की जाने लगी, कंसके सेवकों धेनुकासुर, बकासुर, अघासुर, पूतना, तृणावर्त, प्रलम्बासुर, अरिष्ठासुर आदि सभीको दुराचार करनेकी छूट दे दी गयी थी। चारों ओर जनता कंस-त्राससे त्राहि-त्राहि पुकारने लगी थी तभी भगवान् श्रीकृष्णने प्रकट होकर बलदेवजीके साथ जनकल्याणकारी लीलाएँ करनी प्रारम्भ कर दीं। सर्वप्रथम इन्होंने अशिक्षित एवं भोले-भाले ग्रामीणोंकी रक्षार्थ उन्हींके बीच वास लिया। ग्वाल-मण्डलीके साथ-साथ रहकर खेल-खेलमें ही दोनोंने कंसके अत्याचारी कर्मचारियोंका दमन किया। ग्रामीण जतनाके बीच प्रेम-व्यवहार तथा उनके दुःख-निवारणकी योजनाएँ चलायीं। उत्तम कृषि-सम्बन्धी प्रचार, दूध, घीकी बाहुल्यता, गौपालन आदि इनके मुख्य कार्य रहे।

इन छोटे-छोटे कार्योंसे निवृत्त होकर फिर इन्होंने कंस-वध करके व्रज-जनताको नव-जीवन प्रदान किया। और कंसके स्थानपर उनके पिता उग्रसेनजीको उस विशाल साम्राज्यका शासक बनाया। देवकी और वसुदेव भी कारागारसे मुक्त हुए और उन्होंने अपने बलभद्र तथा कन्हैयाको हृदयसे लगाया। समय प्राप्त होनेपर वसुदेवजीने दोनों पुत्रोंका यज्ञोपवीत-संस्कार कराया और उन्हें महर्षि सान्दीपनिजीके प्रसिद्ध गुरुकुल उज्जैनमें शिक्षा-प्राप्तिके लिए भेजा। दोनों भाइयोंने अपने गुरुदेवसे सभी प्रकारके विषयोंमें दक्षता प्राप्त की और अल्पकालमें ही उन्होंने चौंसठ विद्याओंमें अपूर्व पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। संगीत तथा अन्य ललित कलाएँ, सिद्धि-प्राप्ति, आभूषण-निर्माण, बहुमूल्य हीरे जवाहरातकी परख देशी एवं विदेशी भाषाओंका ज्ञान, पशु-पक्षियोंकी बोलीकी पहचान, इच्छित वेशभूषा धारण करना, पाककला, कूटनीति, सांकेतिक भाषाका परिज्ञान, दूरस्थ वस्तु एवं मनुष्यको आकर्षित करना; विजयदायिनी विद्या आदि सभी कलाओंमें इन्होंने पूर्णता प्राप्त करके अपने शिक्षक वर्गको भी चकित कर दिया।

इस प्रकार सर्वोपयोगी विद्याओंसे परिपूर्ण होकर ये दोनों महापुरुष व्रजको लौट आये। यहाँ आकर इन्होंने उग्रसेनजीके राज्यको पुनः सुव्यवस्थित किया और थोड़े ही समयमें इन्होंने अपनेको इतना वैभवपूर्ण तथा शक्तिशाली बना लिया कि सभी दुराचारी राजाओंका मानमर्दन कर दिया। जरासंधको इन्होंने अनेकों बार पराजित करके उसकी दुष्ट सेनाका संहार करके भारत-भूमिको पापी-विहीन कर दिया।

साथ ही साथ दोनोंने विविध कलाविद् होनेके कारण भारतीय जनता विशेषतः व्रजवासियोंको सभी प्रकारकी विद्याओंसे विभूषित कर दिया। उनके समयमें उत्तम कलाओंका प्रचार सम्यक् रूपसे हुआ। संगीत-कला अपने चरमोत्कर्षपर पहुँच गयी और लोक-संगीत भी शास्त्रीय विधिपर प्रचलित हो चला। यह उसी समयकी उपलब्धिका परिणाम है कि आज भी व्रजके गाँव-गाँव और नगर-नगरमें शास्त्रीय संगीत तथा नृत्य आदिके कुशल कलाकार भरे पड़े हैं। यहाँके संगीतको धाक प्रसिद्ध संगीताचार्य ठाकुर ओंकारनाथ, पटवर्धन एवं व्यास आदि सभीने मानी है।

अकबर सम्राट्के नवरत्नोंमें-से तानसेनने संगीतकला वृन्दावनके स्वामी हरिदासजीसे ही प्राप्त की थी। तानसेन-जैसे संगीतसम्राट्के गुरुदेवके दर्शनके लोभको अकबर संवरण नहीं कर सका और उसे सन्त हरिदासजीकी कुटीपर वेश बदलकर आना ही पड़ा। स्वामीजीके मुखारविन्दसे पीयूषवर्षिणी संगीतधारासे अकबरका मन-मयूर नाच उठा था।

व्रजमें आज भी हरिदास-संगीतशैलीका भरपूर प्रचलन है और इस शैलीके गायक भारतके हर कोनेमें फैले हुए हैं। तबला तथा बंशीवादन, पखावज, सारंगी एवं वीणा आदि सभी वाद्ययन्त्रोंके उत्तम कलाकार भी आज व्रजमें उपलब्ध हैं। और तो और यहाँके गोचारण करानेवाली ग्वाल-मंडलियोंमें भी सुन्दर नृत्यकार एवं गायक मिलेंगे। कोकिलाकण्ठी व्रज-

नारियोंके भावपूर्ण लोकगीत और उनके मुद्रामय नृत्यसे तो दर्शक चकित ही रह जाते हैं। व्रजके मन्दिरोंमें शास्त्रीय संगीत वहाँकी विभिन्न वाणियोंमें आज भी सुरक्षित हैं।

यह सब देखकर सहज ही में अनुमान हो जाता है कि जब कृष्ण तथा राधा-जैसे कला-प्रेमी इस व्रजको अपने अलौकिक नृत्य एवं संगीतसे झंकृत करते होंगे उस समयका कलास्तर कितनी उच्च श्रेणीपर विराजमान होगा।

अब तनिक तत्कालीन साहित्य-गरिमापर भी विचार कर लिया जाय तो साधारणतया यह सिद्ध हो जाता है कि उस समयको नायक श्रीकृष्णचन्द्रजीका ज्ञान-सूर्य इतना प्रचण्ड था कि उससे गीता-जैसी पवित्र गंगाका अवतरण हुआ था। दूसरे शब्दोंमें हम सगर्व कह सकते हैं कि गीता विश्वका सर्वोच्च ग्रन्थ है और उसकी महत्ता सभी देशोंको मान्य है। महात्मा गांधीजीने अनासक्तियोग गीतासे ही सीखा था। तिलकको गीतासे ही सर्वाधिक प्रेम था और उन्होंने अपने कारावासके सात वर्ष गीताकी ही आराधनासे व्यतीत किये। जर्मनके विद्वान् गेटेने गीताको अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर अपने पुस्तकालयके अग्निकाण्डसे बचाया था।

अधिक न कहकर हमारी ज्ञानवृद्धि उस समयके उच्च स्तरकी ओर संकेत देती है और तभी से सम्पूर्ण विश्व गीताप्रणेता भगवान् कृष्ण एवं उनकी जन्मभूमि व्रजके प्रति नत-मस्तक है।

शुद्ध प्रेमकी कल्पना तो बहुतसे देश-तथा शिष्टजन कर लेते हैं किन्तु व्रजमें ऐसे अलौकिक शुद्ध प्रेमका स्वरूप राधा-कृष्ण द्वारा प्रत्यक्षमें दिया है। उस विशुद्ध प्रेमके स्मरणमात्रसे ही मानवके कलुषित हृदयका मल द्रवीभूत होकर अश्रुधार द्वारा बहने लगता है। असंख्य गोपिकाओंके मध्य रहकर पवित्र प्रेमकी गंगा बहानेवाले गोपालकी जन्मभूमि यही व्रज-वसुन्धरा है। अपढ़ और कृषि-कार्यरत ग्रामीणोंको प्रेम करनेवाले कन्हैयाने इसी व्रजरजमें बाल-क्रीड़ाएँ की थीं।

इन्हींके पावन प्रेमकी गाथाएँ सूर, रसखान, कुम्भनदास, नन्ददास और मीरा आदिने अपने भक्तिकाव्य द्वारा गायी हैं। व्रजकी रासमण्डलियाँ भी व्रजराज और वृषभानुजाकी पवित्र जीवन कथाएँ नाटक-शैलीमें सुना-सुनाकर भक्तजन-समूहको प्रेम प्लावित करती हैं। फलतः भक्तिमार्ग, ज्योतिषविद्या एवं आयुर्वेद-विज्ञान सम्बन्धी सैकड़ों ग्रन्थोंका आविर्भाव व्रजके विद्वानों द्वारा हुआ। उसी कालसे यहाँकी यश-सुगन्धि और प्रेमवायु देशभरमें ऐसे प्रबल वेगसे बहती रही हैं कि हिन्दूधर्मके प्रायः सभी आचार्य व्रजकी ओर ही भागते आते रहे हैं। पूज्यपाद स्वामी शंकराचार्य, स्वामी रामानुजाचार्य, स्वामी निम्बार्काचार्य, स्वामी माध्वाचार्य, स्वामी वल्लभाचार्य, श्रीकृष्णचैतन्य गौराङ्ग महाप्रभु आदि सभीने व्रजको ही अपना प्रचारकेन्द्र बनाया और यहींसे सम्पूर्ण भारतमें वैष्णवधर्मका प्रचार किया।

व्रजभूमिमें कुछ ऐसा सम्मोहन है कि गोस्वामी तुलसीदास, मीराबाई, रामकृष्ण परमहंस एवं सूरदास आदि सभीने यहाँ आकर अपनेको धन्य समझा।

व्रजका वृन्दावन धाम, गिरिराज, नन्दग्राम, बरसाना, राधाकुण्ड, महावन, गोकुल, बलदेव नगर, कालिन्दीकूल स्थित कदम्ब, व्रजकरील-कुञ्ज यहाँके विशेष आकर्षण रहे हैं। कितने सन्तोषकी बात है कि व्रजके वायुमण्डलमें बलराम-कृष्णकी रूपमाधुरी, अंग-प्रत्यंगकी लावण्यता, उनके मधुर भाषण, व्यवहारकुशलता, संगीत-प्रवीणता, वंशी सौष्ठव, भक्तवत्सलता तथा उनकी विद्वत्ताकी कथाएँ ही भरी पड़ी हैं। व्रज-कृषक विशेषतः बलरामजीसे प्रेम करता है। क्योंकि कृषि-सम्बन्धी सुधार उनके ही द्वारा प्राप्त हुए थे। यहाँ तक कि जनताने उन्हें हलधरकी उपाधिसे विभूषित किया था। गौपालनमें सदैव रत रहनेवाले छोटे भाईको जनता गोपाल भी कहती थी। इन्हीं दोनों भाइयोंके निर्देशनसे व्रजमें दूध, दही, घी, मक्खनकी धूम मची रहती थी जिससे जनताके अंग तथा बौद्धिक विकासमें सहायता मिलती थी।

यह सब कहनेका हमारा आशय यही है कि कृष्णयुगमें व्रज विश्वका सर्वोच्च प्रदेश था। यहाँकी विद्वत्ता, कलाएँ, सुख-समृद्धि, जीवनसामग्री-सम्पन्नता, विज्ञान-प्राप्तियाँ उत्कर्षकी चरम सीमापर पहुँची थीं और समस्त विश्वको यहाँसे आध्यात्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक नेतृत्व मिलता था।

हमारे सर्वोन्मुखी विकासकी अन्तिम झलक महाभारत-युद्धमें दिखलायी पड़ती है। किन्तु उसके उपरान्त भी बची-खुची सभ्यता दूसरे देशोंके लिए प्रमाण देती रही है।

स्वतंत्रता-प्राप्तिके पश्चात् मथुरामें श्रीकृष्ण-जन्मभूमिका जीर्णोद्धार पूज्य पं० मदन-मोहन मालवीय एवं बिरला और डालमिया-परिवार आदि द्वारा बड़े वेगसे हुआ है। और अब भी वहाँ एक बड़ी योजनान्तर्गत भागवत-भवनका निर्माण हो रहा है। आशा है कि यह भवन भी व्रजका एक महान् आकर्षण-केन्द्र सिद्ध होगा। यहींसे 'श्रीकृष्ण-सन्देश' नामक पत्रिका भी निकल रही है जिसके द्वारा जनताको परमोपयोगी सामग्री प्राप्त हो रही है।

आशा है कि पाठकगण उपरोक्त कथनसे इस निष्कर्षपर पहुँच गये होंगे कि व्रजसे भारत एवं सभी विदेशोंको प्रकाश-स्तम्भकी भाँति विविध प्रकारकी उच्च प्रेरणाएँ मिलती रहती हैं।

●

बंगला देश :
भारतीय आत्माका प्रस्फुटन

ओर छोर हीन—आसमान को थर्राती हुई,
आहत आवाजों की चीख, और बर्बरता के इतिहासमें बेजोड़,
आधुनिक ध्वंसास्त्रोंसे रौंदे जाते हुए, निहत्थे भागते लोग,
गलती इतनी ही कि, उन्होंने अपने आदमी होनेकी शर्तको पहचाना,
और एक हजार मीलके फासले पर रहनेवाले पाँच करोड़ लोगोंके लिए
साढ़े सात करोड़की संख्याके भविष्यमें शोषित होने की
लादी हुई व्यवस्थाको ढोनेसे इनकार कर दिया,
इतना ही कि उन्होंने खुदके होनेको एहसासा,
और उस मुजीबको अपने रहनुमाका समर्थन दिया
जो सिर्फ एक शख्सियतकी सीमा तोड़कर,
आजादीके लिए बंगला देशके दृढ़ संकल्पित संघर्षका
एक जिन्दा प्रतीक बन गया।

बंगला देश,
जहाँ बियाफ्रा और वियतनाम लजाकर चुपचाप बैठ गये हैं,
जहाँ महीनोंसे धाँय-धाँय गाँव और नगर जल रहे हैं,
संगीनों पर बच्चे उछाले जा रहे हैं
छात्राओं और कुल-लक्ष्मियोंके साथ पाशविक बलात्कार,
और उनके अंगभंग किये जा रहे हैं,
सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें लोग कतारोंमें खड़े किये जाकर
रोज गोलियोंसे भूने जा रहे हैं
चुन-चुन कर प्रतिभाके दुलारे प्रोफेसरों और उनके परिवारोंको,
मौतके घाट उतारा जा रहा है,

विश्वविद्यालय खण्डहर किये जा चुके हैं,
लेकिन मुक्ति सैनिक,
जिनके पास हथियार (नये-पुराने) हैं भी नहीं भी हैं,
हर बर्बरताका मुँहतोड़ जवाब दे रहे हैं,
एक नयी सुबहके लिए मार और मर रहे हैं,
वस्तुतः बहुत फर्क होता है,
भाड़ेके सैनिकोंका एक बहुत बड़े झूठके लिए,
हत्या, आगजनी गोलाबारी और आँतक फैलाने,
और आजादीके लिए स्वाधीनताके दीवानोंका,
अन्तिम साँस तक लड़ते हुए,
रोज-ब-रोज दुश्मनको पीछे ढकेलते रहने में,
बहुत फर्क होता है,

नफरत पर बँटा एक नैसर्गिक राष्ट्र,
अब उस बिन्दु पर पहुँच गया है
जहाँसे वह टूटते-टूटते समाप्त होगा, चाहे वह विघटन
बंगला देश, पख्तूनिस्तान, बलूचिस्तानके नामोंसे प्रकट हो,
लेकिन वह अन्ततः होगा भारतीय आत्माका ही प्रस्फुटन······

—डाक्टर जितेन्द्रनाथ पाठक

श्रीराजबली पाण्डेय नहीं रहे !

आचार्य श्री सीताराम चतुर्वेदी

★

कभी-कभी ऐसी दुर्घटनाएँ सहसा मर्माघात कर बैठती हैं कि मनुष्य स्तब्ध और विवश होकर दैवकी प्रबल शक्तिके आगे नतमस्तक होकर बैठ रहता है। डाक्टर राजबली पाण्डेयका आकस्मिक निधन इसी प्रकारकी अत्यन्त कारुणिक घटना है।

डाक्टर पाण्डेय मुझसे अवस्थामें छोटे थे और प्रारम्भसे ही, जबसे उन्होंने भारतीय इतिहास तथा संस्कृतमें एम० ए० किया था तमीसे मेरे अत्यन्त घनिष्ठ आत्मीय बने रहे। सन् १९३२ से १९४५ तक जब-तक मैं महामना मालवीयजीके 'सनातनधर्म' पत्रका संपादक रहा, तबतक वे निरन्तर भारतीय धर्म, संस्कृति और इतिहाससे सम्बद्ध अनेक विषयोंपर अत्यन्त पांडित्यपूर्ण और गम्भीर लेख लिखते रहे। अपनी इस विद्वत्ताके कारण ही वे महामना मालवीयजीके भी कृपापात्र बने रहे। अपनी अध्ययनशीलता और परिश्रमसे उन्होंने अपना ज्ञानका भण्डार निरन्तर समृद्ध करते रहनेका श्लाघनीय प्रयास किया जिसका स्वभाविक परिणाम यह हुआ कि भारतके अत्यन्त उच्चकोटिके विद्वानोंमें उनकी सम्मानपूर्ण गणना की जाने लगी।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें प्रत्न भारतीय इतिहास तथा संस्कृतिके वरिष्ठ और सुयोग्य प्राध्यापकके रूपमें उन्होंने उज्ज्वल यश अर्जित किया और अपने कोमल स्वभाव और सहृदयताके अतिरिक्त काशीके नागरिकोंके भी प्रियपात्र, सम्मान-भाजन और विश्वस्त बन्धुके रूपमें समादृत हुए।

अपने वैदुष्य, लेखन-कौशल तथा मृदुल स्वभावके अतिरिक्त वे बड़े विचारशील गम्भीर वक्ता भी थे। विभिन्न विषयोंपर समय-समयपर उन्होंने जो भाषण किये उनसे उनके गम्भीर पांडित्यकी ही नहीं वरन् विवेकपूर्ण विवेचना-शक्तिका भी परिचय मिलता था। अपने भाषणोंमें वे कभी निर्थक वाग्जालका प्रयोग नहीं करते थे, वरन् अत्यन्त संयत ढंगसे निर्दिष्ट विषयका अत्यन्त कौशलके साथ प्रतिपादन करते थे। एक बार मैं उन्हें ठीक उसी समय काशीसे बलिया ले गया, जिस दिन और जिस समय मेरे सहपाठी और सखा चन्द्रबली पाण्डेयका देहान्त हुआ। मैं भी बड़े असमंजसमें पड़ा था और राजबलीजीकी भी यही मनोदिशा थी, किन्तु बलियाके महाविद्यालयका समावर्तन-महोत्सव हो रहा था और वे उसमें मुख्य अतिथिके रूपमें स्नातकोंको

उपदेश देनेवाले थे। उस अवसरपर उन्होंने जो भाषण दिया, वह इतना अधिक तथ्यपूर्ण, सटीक अनुसन्धानात्मक विचारोंसे ओतप्रोत और विद्वत्तापूर्ण था कि राजनीतिक नेताओंके निरर्थक भाषणोंसे ऊबे हुए लोगोंको सात्त्विक उल्लास और सन्तोष प्राप्त हुआ।

डाक्टर राजबली पाण्डेयने जीवनमें एक बड़ी भारी भूल की कि वे नागरी प्रचारिणी सभाके मन्त्री जा बने। एक और पदके कारण जहाँ उनकी ख्याति सभाके कारण देशभरमें फैली, वहीं वे स्थानीय दुर्नीतिके आखेट बन गये। 'विधिवस सुजन कुसंगत परहीं' और वे सचमुच 'विधिवश' ही इस कुसंगतिमें जा पड़े, जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके तत्कालीन अधिकारियोंके वे अकारण कोपभाजन बन गये और उन्हें काशी विश्वविद्यालय छोड़नेको विवश होना पड़ा, जो वे कभी भी छोड़ना नहीं चाहते थे। किन्तु कभी-कभी बुराईसे भी भलाई निकल जाती है। जहाँ एक ओर उनके गुणोंमें दोष ढूँढनेवाले लोग आ जुटे थे, वहाँ ऐसे भी सज्जनोंकी कमी न थी, जिन्होंने उनके गुणोंका समादर किया और वे अपने असाधारण गुणोंके कारण ही जबलपुर विश्वविद्यालयके उपकुलपति बना दिये गये। विद्या, बुद्धि और विवेकके साथ प्रबन्ध-पटुता ही उपकुलपतिका गौरवपूर्ण लक्षण नहीं होता, उसमें इन गुणोंके साथ-साथ शील, सौजन्य और चरित्र भी आवश्यक होता है।

अपने इन सभी पुंजीभूत गुणोंके कारण जबलपुर विश्वविद्यालयके उपकुलपतिके रूपमें व्यापक सुयश अर्जित किया।

डाक्टर राजबली पाण्डेय मेरा इतना आदर करते थे और मुझसे उनका स्नेह था कि जब कभी वे काशी आते तो मुझसे अवश्य मिल लेते। पिछली बार जब वे आये थे तब उन्होंने मुझसे कहा कि अब वहाँसे अवकाश ग्रहण करनेपर मैं काशीमें ही मुद्रण-यन्त्रालय स्थापित करनेकी सोच रहा हूँ। इस सम्बन्धमें बहुत विस्तारके साथ मेरी उनकी बातचीत हुई और मैंने इस क्षेत्रमें अपना सारा अनुभव उनके सामने खोलकर रख दिया। अन्तमें यही निष्कर्ष निकला कि जबलपुरसे चले आनेपर यह योजना पूर्ण कर ली जायगी। किन्तु यह अत्यन्त घोर दैवदुर्विपाक रहा कि वे जबलपुरसे आने ही नहीं पाये। सदाके लिए वहीं रह गये और अपने सब आत्मीयोंके हृदयमें बड़ी भारी कसक छोड़ते गये जो अब उनकी स्मृति बनकर रह-रहकर हृदयमें शूलके समान कसक रही है।

डाक्टर राजबली पाण्डेयके साथ अत्यन्त विश्वस्त मित्र, सहृदय सखा, चरित्रवान् विद्वान् और गुणज्ञ बन्धु जाता रहा। यद्यपि 'अनायासेन मरणं, विना दैन्येन जीवनम्' (अचानक मृत्यु हो जाना और बिना किसीके आगे दीनता दिखाये जीवित रहना) बड़े सौभाग्यकी बात समझी जाती है तथापि ऐसे अचानक असमय उठ जाना निश्चय ही दैवका भयङ्कर विश्वासघात है। अब तो केवल ईश्वरसे यही कामना की जा सकती है कि दिवंगत आत्माको सद्गति दें और अपने जिस परिवारको वे शोकमग्न और अश्रुमग्न छोड़ गये हैं उन्हें इस अप्रत्याशित विपत्तिमें धैर्य प्रदान करें।

जुलाईके व्रत-त्यौहार

हरिशयनी एकादशी

४ जुलाई आषाढ़ शु० ११ गुरुवार

प्रदोष व्रत

५ जुलाई आषाढ़ शु० १२ शुक्रवार

गुरुपूर्णिमा

८ जुलाई आषाढ़ शु० १५

श्रावण सोमव्रत

१२ जुलाई श्रावण कृष्ण ४ सोमवार

कामदा एकादशी

१८ जुलाई श्रावण कृष्ण ११ रविवार

प्रदोष व्रत

१९ जुलाई श्रावण कृष्ण १२ सोमवार

नागपञ्चमी

२७ जुलाई श्रावण शु० ५ मंगलवार

तुलसी-जयन्ती

२९ जुलाई श्रावण शु० ७ गुरुवार

●
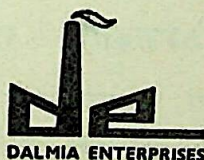
नीतिवचनामृत

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥

आँखि ओट कारज हनत सनमुख भनत सराहि ।
पयमुख विषघट सरिस जो मित्रहिं तजिये ताहि ॥

गृह्णीयादुत्तमां विद्यां नीचस्थामपि मानवः ।
अशुचौ पतितं नैव काञ्चनं कोऽपि मुञ्चति ॥

उत्तम विद्या लीजिये जदपि नीच पै होय ।
पड़ो अपावन ठौरमें कञ्चन तजत न कोय ॥

वरयेत् कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम् ।
सुरूपां सुनितम्बां च नाकुलीनां कदाचन ॥

उत्तम कुलकी वरिय बुध कन्या जदपि कुरूप ।
नीच बंसकी व्याहिये कबहुँ न नारि सुरूप ॥

अग्निहोत्रफला वेदा शीलवृत्तिफलं शुभम् ।
रतिपुत्रफला दारा दत्तभुक्तफलं धनम् ॥

अग्निहोत्र फल वेदको सुभको सील-विचार ।
दान-भोग फल विभवको रति-संतति-फल नारि ॥

तस्करस्य वधो दण्डः कुमित्रस्याल्पभाषणम् ।
पृथक् शय्या तु नारीणां ब्राह्मणस्यानिमन्त्रणम् ॥

बोलिय अलप कुमित्र-सों मारिय चोर प्रचण्ड ।
द्विजहिं न न्यौतिअ, तियनको पृथक् सेज—बड़ दण्ड ॥

•

सूक्ति-सुधा

(१)

वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतम्,
वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम्।
वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचि-
र्वरं भिक्षाशित्वं न च परधनास्वादनसुखम्॥

मौन रह जाना भला मौनमें ही बैठ कहीं,
झूठी बात किन्तु कभी बोलना न अच्छा है।
पुरुष नपुंसक भले ही बन जाये पर—
परनारियोंके संग डोलना न अच्छा है॥
प्राण तज देना भला, किन्तु वचनामृतमें—
विष चुगलीके कभी घोलना न अच्छा है।
भीख माँग करके बुझाना भूख अच्छा, पर—
सम्पदामें सुखको टटोलना न अच्छा है॥

(२)

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः।
अक्रोधस्तपसः श्रुतस्य विनयो धर्मस्य निर्व्याजता
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम्॥

सज्जनता भूषण रुचिर धन वैभवका,
शूर-वीरताका अलंकार मौन रहना।
उपशम ज्ञानका, विनय शास्त्र-बोध का है,
धनका सुपात्रको ही दान एक गहना॥
क्रोधका अभाव ही तपस्याका विभूषण है,
धर्मका अवंचन, समर्थका है सहना।
सबके लिए ही सभी कारणोंसे एक मात्र—
उत्तम आभूषण है शीलका निबहना॥

•

श्रीकृष्ण जन्मस्थान-सेवासंघ मथुराके लिए देवधरशर्मा द्वारा आनन्दकानन प्रेस, ढुण्ढिराज,
वाराणसी–१ में मुद्रित एवं प्रकाशित